प्रथम खण्ड

मौर्यवंशीय तथा मौर्योत्तरकालीन अभिलेख
300 ई०पू० - 300 ई० तक

मौर्य्य-सम्राट् अशोक के अभिलेख

गिरनार प्रथम शिला अभिलेख

1. इयं धमलिपी देवानंप्रियेन
2. प्रियदसिना राञा लेखापिता इध न किं
3. चि जीवं आरभित्पा प्रजूहितव्यं
4. न च समाजो कतव्यो बहुकं हि दोसं
5. समाजम्हि पसति देवानंप्रियो प्रियदसि राजा
6. अस्ति पि तु एकचा समाजा साधुमता देवानं
7. प्रियस प्रियदसिनो राञो पुरा महानसम्हि
8. देवानंप्रियस प्रियदसिनो राञो अनुदिवसं ब
9. हूनि प्राणसतसहस्रानि आरभिसु सूपाथाय
10. स अज यदा अयं धंमलिपी लिखिता ती व प्रा
11. णा आरभरे सूपाथाय द्वो मोरा एको मगो सो पि
12. मगो न ध्रुवो एते पि प्राणा पछा न आरभिसरे

संस्कृत-छाया

1. इयं धर्मलिपिः देवानांप्रियेण
2. प्रियदर्शिना राज्ञा लेखिता। इह न क-
3. श्चित् जीवः आलभ्य प्रहोतव्यः।
4. न च समाजः कर्तव्यः। बहुकं हि दोषं
5. समाजे पश्यति देवानांप्रियः प्रियदर्शी राजा।
6. सन्ति अपि तु एके समाजाः साधुमताः देवानां
7. प्रियस्य प्रियदर्शिनः राज्ञः। पुरा महानसे
8. देवानांप्रियस्य प्रियदर्शिनः राज्ञो अनुदिवसं ब-
9. हूनि प्राणशतसहस्राणि आलभ्यन्त सूपार्थाय।
10. तत् अद्य यदा इयं धर्मलिपिः लिखिता, त्रयः एव प्रा-
11. णाः आलभ्यन्ते सूपार्थाय—द्वौ मयूरौ, एकः मृगः, सोऽपि
12. मृगः न ध्रुवः। एते अपि त्रयः प्राणाः पश्चात् न आलप्स्यन्ते।

(हिन्दी अनुवाद)

1-2. देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा ने यह धर्मलिपि लिखवाई है।

3. यहाँ किसी भी प्राणी को मारकर होम नहीं करना चाहिए।

4. 'समाज' का आयोजन नहीं करना चाहिए। देवानांप्रिय,

5-12. प्रियदर्शी राजा 'समाज' में अनेक दोष देखते हैं। देवानांप्रिय प्रियदर्शी ने कुछ एक 'समाजों' को ही अच्छा माना है। देवानांप्रिय प्रियदर्शी के रसोईघर में पहले प्रतिदिन लाखों प्राणी सूप के उद्देश्य से मारे जाते थे। जबकि आज यह धर्मलिपि लिखी गई है, सूप के लिये केवल तीन ही प्राणी मारे जाते हैं— दो मोर तथा एक हरिण। हरिण का वध भी सदैव नहीं होगा। कुछ समय पश्चात् ये तीन प्राणी भी नहीं मारे जाया करेंगे।

टिप्पणियां—

1. धंमलिपि— धर्मलिपि अथवा धार्मिक लिपि से तात्पयं राजाज्ञा से है जो कि प्रजाजनों को कर्त्तव्याकर्त्तव्य का बोध कराने के उद्देश्य से लिखवाई गई है।
2. देवानप्रियस (देवानां प्रिय)—'अलुक् तत्पुरुष' से 'देवानांप्रिय' शब्द का अर्थ देवताओं का प्यारा' है। परन्तु यहाँ मौर्य सम्राट् अशोक की सम्मानसूचक उपाधि है जिसका समासविच्छेद नहीं किया जा सकता। भट्टोजिदीक्षित से परवर्ती वैयाकरणों ने इस शब्द का अर्थ 'मूर्ख' तथा 'पशुयाजक' किया है क्योंकि निर्बुद्धि पशु-पूजक ही मूर्खवत् आचरण करता है। भट्टोजिदीक्षित से पूर्ववर्ती वैयाकरणों ने केवल षष्ठ्यन्त 'देव' शब्द से समास का अभाव माना है। निन्दार्थक 'मूर्ख' अर्थ के मूल में मूलतः बौद्धों के प्रति समाज में असम्मान प्रदर्शित करना था।
3. पियदसि अशोक का ही एक सम्मानसूचक नाम (प्रियदर्शी)

   —ऐसे समाज उत्सव जहां जुआ आदि अनाचरण होता होगा।
4. महानसम्हि (महानसे)— भोजनगृह से तात्पर्य खाने के उद्देश्य से 'भोजनागारों' से हैं। केवल अशोक का 'भोजनागार' अर्थ अभीष्ट नहीं है, अपितु, सारे राज्य के भोजनागारों से है।
5. गुजरात में गिरिनार गिरनार अथवा गिरिनगर नाम से जैनियों का एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थल है। रेलवे स्टेशन से लगभग 2 किलोमीटर की दूरी पर गिरनार पर्वत की चढ़ाई आरम्भ होने क स्थल पर ही विशाल शिला पर अशोक

के 14 लेख खुदे हैं। उसी पर रुद्रदामा(न्) तथा स्कन्दगुप्त के अभिलेख भी हैं। इस शिला पर 800 वर्षों का इतिहास खुदा हुआ है। पुरातत्त्व विभाग ने इस शिलाखण्ड को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से इसके ऊपर एक पक्की कंकरीट की छत बनवा दी है। परन्तु दुःख की बात है कि वहां पर नियुक्त पुरातत्त्व विभाग के कर्मचारी यात्रियों को भ्रमित करने के लिये उस शिला खण्ड का पीर साहब की मजार बताकर परोक्ष रूप से यात्रियों से वहाँ दान दक्षिणा आदि मांगते रहते हैं।

6. प्रस्तुत अभिलेख तिथि विहीन है।

4

गिरनार द्वितीय शिला अभिलेख

1. सर्वत विजितम्हि देवानंप्रियस प्रियदसिनो राञो
2. एवमपि प्रचंतेसु यथा चोडा पाडा सतियपुतो केतलपुतो आतंब
3. पंणी अंतियको योनराजा ये वा पि तस अंतियकस सामीपं
4. राजानो सर्वत देवानंप्रियस प्रियदसिनो राञो द्वे चिकीछा कता
5. मनुसचिकीछा च पसुचिकीछा च ओसुढानि च यानि मनुसोपगानि च
6. पसोपगानि च यत यत नास्ति सर्वत हारापितानि च रोपापितानि च
7. मूलानि च फलानि च यत यत नास्ति सर्वत हारापितानि च रोपापितानि च
8. पंथेसू कूपा खानपिता व्रछा च रोपापिता परिभोगाय पसुमनुसानं

संस्कृत-छाया

1. सर्वत्र विजिते देवानांप्रियस्य प्रियदर्शिनः राज्ञः,
2. एवमपि प्रत्यन्तेषु यथा चोलाः, पाण्ड्याः, सत्यपुत्रः, केरलपुत्रः आताम्र-
3. पर्णी, अन्तियकः योनराजः, ये वा अपि तस्य अन्तियकस्य सामीपाः
4. राजानः सर्वत्र देवानांप्रियस्य प्रियदर्शिनः राज्ञः द्वे चिकित्से कृते
5. मनुष्यचिकित्सा च पशुचिकित्सा च। ओषधयः च याः मनुष्योपगाः च
6. पशूपगाः च यत्र यत्र न सन्ति, सर्वत्र हारिताः च रोपिताः च।
7. मूलानि च फलानि च यत्र यत्र न सन्ति, सर्वत्र हारितानि च रोपितानि च
8. पन्थेषु कूपाः च खानिताः, वृक्षाः च रोपिताः परिभोगाय पशुमनुष्याणाम्।

(हिन्दी अनुवाद)

1-3 देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा के सभी विजित (प्रदेशों) भू-भाग में तथा सीमावर्ती चोल, पाण्ड्य, सत्यपुत्र, केरलपुत्र ताम्रपर्णी तथा यवनराज अन्तियक तथा अन्तियक के आसपास जितने भी अन्य राजा है, उन सबके

4-6 राज्यों में देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा ने दो प्रकार की चिकित्सा सुविधाऐं उपलब्ध कराई हैं—(1) मनुष्यचिकित्सा तथा (2) पशुचिकित्सा। (इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये) जो जो औषधियाँ मनुष्यों एवं पशुओं के लिये उपयोगी हैं, जहाँ जहाँ नहीं हैं (थी) सर्वत्र उपलब्ध करवाई तथा

7-8 उगाई गई हैं तथा मूल (कन्दमूल) और फल जो जहाँ-जहाँ नहीं है (थे) सब मंगवाए गए तथा उगवाए गए हैं। मनुष्यों तथा पशुओं के परिभोग

(प्रयोग) के लिये मार्गों में कुएं खोदे गए हैं तथा वृक्ष लगवाए गए हैं।

टिप्पणियाँ—

1. विजितम्हि— नियंत्रण के आधीन राज्य अर्थात् अपना राज्य।
2. प्रचन्त (प्रत्यन्त), सीमावर्ती प्रदेश जिनकी सीमाएं मौर्य सम्राट् के राज्य से मिलती थीं।
3. चोड़ा (चोल राज्य), पाडा (पाण्डय राज्य), केतलपुत्र (केरलपुत्र), तम्बपण्णी, (ताम्रपर्णी)-जगन्नाथ पुरी के पार समुद्र तट के बीच बसा हुआ टापू।
4. सतियपुत (सत्यपुत्र) राज्य की स्थिति संभवत: मालाबार प्रदेश में रही होगी।
5. प्रस्तुत अभिलेख अशोक के जनोपयोगी तथा कार्यों का उल्लेख करता है जिनसे मार्गों पर छायादार फलों वाले वृक्ष लगवाना है। असके अतिरिक्त मनुष्यों व पशुओं की चिकित्सा में काम आने वाले पेड़ पौधे भी अपने साम्राज्य की सीमाओं से लगने वाले देशों में भी लगवाये।
6. यह लेख भी तिथि विहीन है।

गिरनार तृतीय शिला अभिलेख

1. देवानंप्रियो पियदसि राजा एवं आह द्वादसवासाभिसितेन मया इदं आञपितं
2. सर्वत विजिते मम युता च राजूके च प्रादेसिके च पंचसु वासेसु अनुसं
3. यानं नियातु एतायेव अथाय इमाय धमानुसस्ठिय यथा अञा
4. य पि कमाय साधु मातरि च पितरि च सुस्रूसा मित्र संस्तुतञातीनं बाम्हण
5. समणानं साधु दानं प्राणानं साधु अनारंभो अपव्ययता अपभांडता साधु
6. परिसा पि युते आञपयिसति गणनायं हेतुतो च व्यंजनतो च

संस्कृत-छाया

1. प्रियदर्शी राजा एवम् आह द्वादशवर्षाभिषिक्तेन मया इदम् आज्ञप्तं
2. मम युक्ताः च, रज्जुकाः च, प्रादेशिकाः च पञ्चसु पञ्चसु सर्वत्र विजिते वर्षेषु अनुसं
3. एतस्मायेव अर्थाय– अस्यै धर्मानुशस्तये, यथा अन्य–
4. स्मै अपि कर्मणे साधु मातरि च पितरि च शुश्रूषा; ज्ञातिभ्यः ब्राह्मण-श्रमणेभ्यः साधु दानं,
5. प्राणानां साधुः अनालम्भः, अल्पव्ययता अल्पभाण्डता साधु।
6. परिषदः अपि युक्तान् आज्ञापयिष्यति गणनायां हेतुतः च व्यञ्जनतः च।

(हिन्दी अनुवाद)

1. देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा ने इस प्रकार कहा है–
अपने राज्याभिषेक काल के बारह वर्ष पश्चात् मैंनें यह आज्ञा दी है कि
2. मेरे सम्पूर्ण राज्य में युक्त, रज्जुक तथा प्रादेशिक अधिकारी प्रत्येक पांच
3. वर्ष के अन्तराल से एक-दूसरे के पश्चात् यात्रा करें और इसी प्रयोजन के
4. लिये-धर्मानुशस्ति अर्थात् धार्मिक उपदेश देने के लिये अपने अन्य नियत कर्त्तव्यों के अतिरिक्त भी जानें– जैसे प्रत्येक व्यक्ति अपने माता-पिता की
5. सेवा करे, मित्रों स्नेही बान्धवों, ब्राह्मणों तथा श्रमणों को दान देना अच्छा
6. है, जीव हिंसा न करना अच्छा है! (महामात्यों की) परिषत् भी युक्त

अधिकारियों को इस विषय में अक्षरशः तथा भावना के अनुकूल व्यवहार करने के लिए आदेश देगी।

टिप्पणियां—

1. दुवादसवासाभिसितेन—अशोक के अभिलेखों में कालगणना की विधि जिसका आरम्भ अशोक के राज्याभिषेक काल से हुआ था।
2. युता—वे राजकीय अधिकारी जिनकी नियुक्ति एक विशिष्ट कार्य के लिये की गई हैं।
3. राजूके (लजूका-चौथा स्तम्भ लेख)—दिल्ली टोपरा स्तम्भ के चौथे अभिलेख में वर्णित 'रज्जुक' अधिकारी सम्भवतः जिला स्तर पर जिले के मुख्य न्यायाधीश (दण्डाधिकारी) जज सैशन हुआ करते थे जिन्हें अपराधियों को कारागार में भेजने से लेकर मृत्युदण्ड देने तक का अधिकार था, अपराधी के निर्दोष होने पर उसे छोड़ने का अधिकार भी प्राप्त था। अपराधी सिद्ध हुए दण्ड-प्राप्त व्यक्ति के निर्दोष परिवार के सदस्यों के जीवन यापन का प्रबन्ध करना भी रज्जुकों का कर्त्तव्य था। इस अभिलेख से स्पष्ट है कि इस लेख के लिखने के समय ही रज्जुकों की नियुक्तियाँ की गई थीं।
4. प्रादेसिक—सम्भवतः अनेक रज्जुकों के कार्य को देखने के लिये 'प्रादेशिक' अधिकारी होते थे। आज के सन्दर्भ में इसे राज्यपाल भी कह सकते हैं।
5. धमानुसस्टिय (धमानुशस्तयै)-धार्मिक प्रवचन
6. अपव्ययता-कम खर्च करना अर्थात् आवश्कताओं को सीमित करना।
7. अपभांडता-अल्पभाण्डता अर्थात् मितसंचय-जमाखोरी न करना।
8. परिसा—परिषत्-मंत्री-परिषत् अथवा महामात्र-परिषत्
9. गणनायं—आचरण के लिये
10. हेतुतः—प्रयोजन के अनुसार (भावना के अनुकूल)
11. व्यञ्जनतो—अक्षरशः (पूरी तरह से)
12. ऐसा इतिहासकारों का बहुसम्मत मत है कि अशोक ने 35 वर्ष की आयु में राज्य प्राप्त किया और 8 वर्ष पश्चात् राज्य में शान्ति स्थापित करने के पश्चात् लगभग 42-43 वर्ष की आयु में उसका राज्याभिषेक समारोह हुआ। तभी से कालगणना आरम्भ हुई। प्रस्तुत लेख लिखे जाने तक अशोक की आयु अनुमानतः 55 वर्ष रही होगी।

गिरनार चतुर्थ शिला अभिलेख

1. अतिकांत अतरं बहूनि वाससतानि वढितो एव प्राणारंभो विहिंसा च भूतानं आतीसु
2. असंप्रतिपती ब्रम्हणस्रमणानं असंप्रतीपती त अज देवानंप्रियस प्रियदसिनो राञो
3. धंमचरणेन भेरीघोसो अहो धंमघोसो विमानदसणा च हस्तिदसणा च
4. अगिखंधानि च अञानि च दिव्यानि रूपानि दसयित्पा जनं यारिसे बहूहि वाससतेहि
5. न भूतपुवे तारिसे अज वढिते देवानंप्रियस प्रियदसिनो राञो न धमानुसस्टिया अनारं
6. भो प्राणानं अविहीसा भूतानं आतीनं संपटिपती ब्रम्हणसमणानं संपटिपती मातरि पितरि
7. सुसुसा थैरसुसुसा एस अञे च बहुविधे धंमचरणे बढिते (।) वढयिस्यति चेव देवानंप्रियो
8. (प्रिय) यदसि राजा धर्म(च) रणं इदं पुत्रा च पोत्रा च प्रपोत्रा च देवानंप्रियस प्रियदसिनो
9. (प्र) वधयिसंति इदं (धं) मचरणं आव सवटकपा धमम्हि सीलम्हि तिस्टंतो (धं) में अनुसासिसंति
10. (ए) स हि सेस्टे कंमे य धमानुसासनं धंमचरणे पि न भवति असीलस (त) इमम्हि अथम्हि
11. (व) धी च अहीनी च साधु एताय अथाय इदं लेखापितं इमस अथ (व) धि युजंतु हीनि च
12. (नो) लोचेतव्या द्वादसवासाभिसितेन देवानंप्रियेन प्रियदसिना राञा इदं लेखापितं

संस्कृत-छाया

1. अतिक्रान्तम् अन्तरं बहूनि वर्षशतानि वर्धित एव प्राणालम्भः, विहिंसा च भूतानां ज्ञातीषु

2. असम्प्रतिपत्तिः, ब्राह्मण-श्रमणानाम् असम्प्रतिपत्तिः। तत् अद्य देवानांप्रियस्य प्रियदर्शिनः राज्ञः
3. धर्मचरणेन भेरीघोषः अभवत् धर्मघोषः। विमानदर्शनात् च हस्तिदर्शनात् च,
4. अग्निस्कन्धान् च, अन्यानि च दिव्यानि रूपाणि दार्शयित्वा जनं यादृशं बहुभिः वर्षशतैः
5. भूतपूर्वं, तादृशम् अद्य वर्धितं देवानांप्रियस्य प्रियदर्शिनः राज्ञः धर्मानुशास्त्या अनालं-
6. भः प्राणानाम् अविहिंसा भूतानां, ज्ञातीनां सम्प्रतिपत्तिः, ब्राह्मणश्रमणानां संप्रतिपत्तिः, मातरि पितरि
7. शुश्रूषा, स्थविरशुश्रूषा। एतत् अन्यत् च बहुविधं धर्मचरणं वर्धित, वर्धयिष्यति चैव देवानांप्रियः
8. प्रियदर्शी राज्ञा धर्मचरणं इदम्। पुत्राः च, पौत्राः च प्रपौत्राः राज्ञो च देवानांप्रियस्य प्रियदर्शिन राज्ञः
9. प्रवर्धयिष्यन्ति इदं धर्मचरणं यावत् संवर्तकल्पं, धर्मे शीले तिष्ठन्तः धर्मम् अनुशासिष्यन्ति।
10. एतत् हि श्रेष्ठं कर्म यत् धर्मानुशासनम्। धर्मचरणम् अपि न भवति अशीलस्य। तत् अस्मिन् अर्थे
11. वृद्धिः च अहीनिः च साधु। एतस्मै अर्थाय इदं लेखापितम् अस्य अर्थस्य वृद्धिः युज्यतां हानिः च
12. नो रोचयितव्या। द्वादशवर्षाभिषिक्तेन देवानंप्रियेण प्रियदर्शिना राज्ञा इदं लेखापितम्

(हिन्दी अनुवाद)

1. अतीत काल में कई सौ वर्षों से प्राणियों का वध, जीवों की हिंसा,
2. बन्धु बान्धवों का अनादर तथा ब्राह्मणों व श्रमणों का अनादर बढ़ता ही रहा है, वह (परिस्थिति) आज (अनेक प्रकार से धर्माचरण में बदल गई है)
3. देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा के स्वयं धर्माचरण से (युद्धों का) भेरी घोष
4. धर्मघोष बन गया है। विमानों, हाथियों तथा अग्निस्कन्धों के प्रदर्शन तथा
5. अन्य दैवी प्रदर्शनों को जनता को दिखाने से, जैसा कि पहले सैकड़ों वर्षों में नहीं हुआ, वैसा आज देवानांप्रिय प्रिदयदर्शी राजा के धर्मानुशासन से
6. प्राणियों का वध तथा जीवों की अहिंसा, बन्धुओं का आदर, ब्राह्मणों व

7. श्रमणों का सम्मान, माता व पिता की सेवा तथा वृद्धों की सेवा बढ़ गई है। यह तथा इसी प्रकार का अन्य धर्माचरण नाना प्रकार से बढ़ा है और
8. देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा इसे और बढ़ायेंगे। देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा के पुत्र, पौत्र तथा प्रपौत्र कल्पान्त तक इस धर्माचरण को और बढ़ायेंगे। धर्म
9. व शील का पालन करते हुए इस धर्माचरण को (और) बढ़ायेंगे क्योंकि
10. धर्माचरण ही श्रेष्ठतम कर्म है। जो शीलवान् नहीं है वह धर्माचरण भी नहीं
11. कर सकता। इसलिये धर्माचरण की वृद्धि करना तथा हानि न होने देना
12. अच्छा है। इसी प्रयोजन से यह लेख लिखवाया है कि यह धर्माचरण वृद्धि से युक्त हो तथा इसकी हानि किसी को रुचिकर न लगे (हानि न होने पाए)।
राज्यभिषेक के बारह वर्ष पश्चात् देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा ने यह लेख लिखवाया।

टिप्पणियां—

1. असंप्रतीपती-अनादर की भावना
2. धमचरणेन-धर्माचरण से-अशोक के अभीष्ट 'धम्म' अथवा धर्म का स्वरूप प्रस्तुत अभिलेख से स्पष्ट होता है कि अशोक का प्रचारित 'धम्म' बौद्ध धर्म नहीं था अपितु सामान्य जन-सेवित या पालित मानवधर्म मात्र था जो जीओ और जीने दो की भावना पर आधारित था। माता-पिता की सेवा, मित्रों का मान सम्मान, यथा शक्ति योग्यपात्रों को दान देना—ये सभी मनुष्य धर्म के लक्षण हैं जिनके अभाव में मनुष्य मनुष्य कहलाने का अधिकारी नहीं रहता।
3. विमानदसणा-हस्तिदसणा-अगिखंदानि-जैसे आज शोभा यात्राओं में निकलने वाली मनोरम झांकियों का उद्देश्य दर्शकों में धर्म की भावना को भरना है, वैसी ही भावना स्वर्ग को ले जाने वाले विमानों, हाथियों तथा नरक को दर्शित करने वाली नरकाग्नि से उत्पन्न करना था कि लोग धर्माचरण करके स्वर्ग को प्राप्त करें, अधर्माचरण करके नरकाग्नि में न झुलसें।
4. दुवादसवासाभिसितेन-जब राज्याभिषेक समारोह हुए बारह वर्ष बीत चुके हैं। लेख लिखवाने का समय है।

गिरनार पञ्चम शिला अभिलेख

1. देवानंप्रियो पियदसि राजा एवं आह कलाणं दुकरं य (ो) आदिकरो कलाणेस सो दुकरं करोति
2. त मया बहु कलाणं कतं त मम पुता च पोता च परं च तेन ये मे अपचं आव संवटकपा अनुवतिसरे तथा
3. सो सुकतं कासति यो तु एत देसं पि हापेसति सो (दु) कतं कासति सुकरं हि पापं अतिकातं अंतरं
4. न भूतप्रुवं धममहामाता नाम त मया तैदसवासाभि (सितेन) धंममहामाता कता ते सवपासंडेसु व्यापता धमाधिस्टानाय
5. ..... धंमयुतस च योणकंबो (ज) गंधारानं रिस्टिकपेतेणिकानं ये वापि अंञे (अ) पराता भतमयेसु व
6. ..... (सु) खा (य धम) युतानं अपरिगोधाय व्यापता ते बंधनबधस पटिविधानाय
7. ..... (प्र) जा कताभीकारेसु वा थैरेसु वा व्यापता ते पाटलिपुते च बाहिरसु च
8. ..... (ये) वा पि मे अञे ञातीका सर्वत व्यापता ते यो अयं धंमनिस्रितो ति वा।
9. ......ते धंममहामाता एताय अथाय अयं धंमलिपि लिखिता

संस्कृत-छाया

1. देवानंप्रियः प्रियदर्शी राजा एवं आह—कल्याणं दुष्करम्। यः आदि-करः कल्याणस्य सः दुष्करं करोति।
2. तत् मया बहु कल्याणं कृतम। तत् मम पुत्राः च पौत्राः च, परं च तेभ्यः यानि मे अपत्यानि यावत् संवर्तकल्पं अनुवर्तिष्यन्ते तथा,
3. ते सुकृतं करिष्यन्ति। यः तु एकदेशम् अपि हास्यति सः दुष्कृतं करिष्यति। सुकरं हि पापम्। अतिक्रान्तम् अंतरं
4. न भूतपूर्वाः धर्ममहामात्राः नाम। ते मया त्रयोदशवर्षाभिषिक्तेन धर्ममहामात्राः कृताः। ते सर्वपाषण्डेषु व्यापृताः धर्माधिष्ठानाय

5. धर्मयुक्तस्य च। योनकम्बोजगन्धाराणां राष्ट्रिक-पेतेनिकानां ये वा अपि अन्ये अपरान्ताः भृतिमयेषु व
6. सुखाय धर्म-युक्तानां अपरिगोधाय व्यापृताः ते बन्धन-बद्धस्य पतिविधानाय
7. प्रजासु कृताभिकारेषु वा स्थविरेषु वा व्यापृताः ते पाटलिपुत्रे च बाह्येषु च
8. ये वा अपि मे अन्य ज्ञातिकाः सर्वत्र व्यापृताः ते। यः अयं धर्मनिश्रितः इति वा।
9. ..... ते धर्ममहामात्राः। एतस्मै अर्थाय इयं धर्मलिपिः लिखिता।

(हिन्दी अनुवाद)

1. देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजाने ऐसा कहा—कल्याण करना अत्यन्त कठिन कार्य है। जो कल्याण करने में (पहल करता है) वास्तव में ऐसा व्यक्ति कल्याण की दिशा में अत्यन्त कठिन कार्य करता है।
2. इस कारण मैंने अनेक कल्याण के कार्य किए हैं। उस कार्य को मेरे पुत्र पौत्र और (प्रपौत्रादि) जो उनके पश्चात् उत्पन्न होंगे-कल्प के अन्त तक (मेरे कार्यों का) अनुसरण करेंगे।
3. वे सुकृत (अच्छा कार्य) ही करेंगे। जो इस कार्य के एक भाग की भी जो अवहेलना करेगा, वह दुष्कर्म ही करेगा। पाप करना अत्यन्त सरल है। बीते हुए अन्तराल (समय में)।
4. 'धर्म महामात्र' नाम (पदवी) वाले (अधिकारी) नहीं होते थे। मैंने अपने राज्याभिषेक काल के तेरह वर्ष पश्चात् धर्म महामात्रों की नियुक्तियाँ की हैं। धर्म की स्थापना के लिए वे सब सम्प्रदायों में विद्यमान है।
5. जो धर्मयुक्त व्यक्ति हैं (उनके सही मार्ग दर्शन के लिए), यवन, कम्बोज, गान्धार, राष्ट्रिक, पैतनिक और जो भी अन्य सीमावर्ती राज्यों में रहने वाले व्यक्ति हैं चाहे वे सेवक हों—
6. यदि वे धर्माचरण करने वाले हैं—उन सभी को मुक्ति प्राप्त करवाने के उद्देश्य—वे धर्म महामात्र (सांसारिक मोह-माया आदि के) बन्धनों में जकड़े हुओं के प्रतीकार के लिये (विद्यमान है)।
7. जो भूतप्रेतादि बाधाओं से पीडित प्रजाजन हैं, तथा बहुत वृद्ध हैं, चाहे वे पाटलिपुत्र में हों या पाटलिपुत्र से बाहर-उन सभी में वे (धर्म महामात्र) विद्यमान हैं।
8. और जो मेरे अन्य बान्धवजन हैं उन सब में भी वे व्यापृत हैं यह विचार करने के लिए कि अमुक जन धर्माचरण करता है अथवा नहीं।

9. ..... वे धर्ममहामात्र (ही निश्चय करेंगे) इसी उद्देश्य से यह धर्मलिपि लिखवाई है।

टिप्पणियां—

1. धंममहामाता

इस शिलालेख से केवल यही ज्ञात होता है कि प्रजाजनों को धर्म को सही स्वरूप सिखलाने के उद्देश्य से अशोक ने अपने राज्यारोहण के तेरह वर्ष पश्चात् 'धर्ममहामाता' धर्ममहामात्रों के नियुक्ति की थी। परन्तु यह मानना असंगत होगा कि यह लेख राज्यारोहण के बारह वर्षों बाद लिखवाया गया था। अभिलेख की चौथी पंक्ति के अनुसार अशोक ने अभिषेक के तेरह वर्ष बीत जाने पर धर्ममहातमाओं (धर्ममहामात्रों) की नियुक्तियां की थीं। उनका उल्लेख 14 वीं पंक्ति में उल्लिखित अभिषेक के बारहवें वर्ष में कैसे हो सकता है? इस कारण यदि चौथी पंक्ति के 'तैदस' के स्थान पर 'तिवस' या 'त्रैवस' पढ़ें तो अधिक समीचीन व युक्तियुक्त होगा। दूसरे शब्दों में अशोक ने सिंहासन पर बैठते ही 'धर्मशास्त्रों' की कल्पना कर ली होगी और तीन वर्षों में ही उसे कार्यरूप में परिणित कर दिया होगा। 'धममहामाता' केवल बौद्ध धर्म की ही शिक्षा नहीं देते थे अपितु प्रत्येक सम्प्रदाय में विद्यमान होने से तत् तत् सम्प्रदाय की शिक्षा देते थे।

2. 'व्यापता'—(व्यापृता) शब्द का अर्थ यहाँ 'छद्मरूप में विद्यमान' नहीं हैं क्योंकि अशोक के बन्धु-बान्धवों में उनका छिपकर रहना असम्भव प्रायः रहा होगा।

3. यवन, कम्बोज, राष्ट्रिक व पैतिनिक—अशोक के राज्य की पश्चिमी सीमा पार के पड़ौसी रहे होंगे जहाँ सद्‌भावना के उद्देश्य से अशोक ने धर्मप्रचारकों के रूप में महामात्रों की नियुक्ति की होगी। वे कभी भी छिपकर गुप्तचर के रूप में छद्मवेश में धर्म प्रचार नहीं करते होंगे। जिस प्रकार आज भारतीय दूतावासों में 'सांस्कृतिक अधिकारी' होते हैं, कुछ उसी प्रकार के व्यक्ति अशोक ने पड़ोसी राज्यों में नियुक्त किए होंगे।

गिरनार षष्ठ शिला अभिलेख

1. देवा (नंप्रिये) पियदसि राजा एवं आह अतिकातं अंतरं
2. न भूतपुव (सर्व काले) अथकंमे व पटिवेदना वा त मया एवं कतं
3. सवे काले भुंजमानस मे ओरोधनम्हि गभागारम्हि वचम्हि व
4. विनीतम्हि च उयानेसु च सर्वत पटिवेदका स्टिता अथे मे जनस
5. पटिवेदेथ इति सवत्र च जनस अथे करोमि च किचि मुखतो
6. आजपयामि स्वयं दापकं वा स्रावापकं वा य वा पुन महामात्रेसु
7. आचायिके आरोपितं भवति ताय अथाय विवादो निझती व संतो परसायं
8. आनंतरं पटिवेदेतव्यं मे सर्वत्र सर्वे काले एवं मया आजपितं नास्ति हि मे तोसो
9. उस्टानम्हि अथसंतीरणाय व। कतव्यमते हि मे सर्वलोकहितं
10. तस च पुन एस मूले उस्टानं च अथसंतीरणा च नास्ति हि कंमतरं
11. सर्वलोकहितत्पा य च किंचि पराक्रमामि अहं किति भूतानं आनंणं गछेयं
12. इध च नानि सुखापयामि परत्र च स्वगं आराधयतुं त एताय अथाय
13. अयं धंमलिपी लेखापिता किंति चिरं तिस्टेय इति तथा च में पुत्रा पोता च प्रपोत्रा च
14. अनुवतरं सवलोकहिताय दुष्करं तु इदं अञत्र अगेन पराक्रमेन।

संस्कृत-छाया

1. देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा एवं आह— अतिक्रान्तम् अन्तरं
2. न भूतपूर्व सर्वस्मिन् काले अर्थ-कर्म वा प्रतिवेदना वा तत् मया एवं कृतम्
3. सर्वस्मिन् काले भुञ्जतः मे अवरोधने गर्भागारे व्रजे वा।
4. वैनीतके च, उद्यानेषु च सर्वत्र प्रतिवेदकाः स्थापिताः— अर्थं मे जनस्य
5. प्रतिवेदयन्तु इति, सर्वत्र च जनस्य अर्थं करोमि यत् च किञ्चित् मुखतः
6. यात्रापयामि स्वयं दापकं वा, श्रावकं वा, यत् वा पुनः महामात्रेषु
7. आत्यायिकम् आरोपितं भवति, तस्मै अर्थाय विवादः निध्यात्यां वा सति परिषदि,
8. अनन्तरं प्रतिवेदितव्यं मे सर्वत्र सर्वस्मिन् काले एवं मया आज्ञप्तम्। नास्ति हि मे तोषः
9. उत्थाने अर्थ-संतीरणायां वा। कतव्य-मतं हि मे सर्व-लोक-हितम्।

10. तस्य च पुनः एतत् मूलम् उत्थानं च, अर्थसंतीरणा च। नास्ति हि कर्मतर
11. सर्व-लोक-हितत्वात्। यत् च किञ्चित् पराक्रमे अहं किमिति भूतानाम् आनृण्यं गच्छेयम्,
12. इह च एनान् सुखयामि परत्र च स्वर्गम् आराधयन्तु तत् एतस्मै अर्थाय
13. इयं धर्मालिपिः लेखिता किमिति चिरं तिष्ठेत् इति, तथा च मे पुत्राः पौत्राः च प्रपौत्रा च
14. अनुवर्तेरन् सर्वलोकहिताय। दुष्करं तु इदम् अन्यत् अग्रयात् पराक्रमत्।

(हिन्दी अनुवाद)

1. देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा ने इस प्रकार कहा है—बहुत दिनों
2. से बीते हुए समय में कभी भी राज्य कार्य या प्रतिवदेन स्वीकार करने का कार्य हर समय नहीं होता था। इस लिए मैंने ऐसा आदेश दिया है कि
3. सब समय (सदैव) चाहे मैं भोजन कर रहा हूँ चाहे अपने अन्तपुर में होऊँ, गर्भागार में, [illegible]शाला में अथवा
4. पूजाघर में या उद्यान में ही क्यों न होऊँ (मेरे) प्रतिवेदक जिनकी मैंने नियुक्ति की हैं प्रजा के
5. कार्य को मेरे सम्मुख प्रस्तुत करें। और मैं सब स्थानों पर प्रजाजन का कार्य करता हूँ, जो कुछ मुख से
6. आज्ञा देता हूँ, दानादि दिलवाता हूँ, या किसी को आज्ञा सुनने के लिये कहता हूँ तथा महामात्रों को
7. कोई आवश्यक निर्देश दिये जाऐं और उनमें उस विषय से सम्बद्ध यदि कोई विवाद उत्पन्न हो तो परिषत् में
8. कालान्तर में सभी समय में (अवस्थाओं में) प्रतिवेदन किया जाय ऐसी मैंने आज्ञा दी है क्योंकि प्रजा के कल्याण से मैं कभी भी सन्तुष्ट नहीं होता।
9. चाहे मैं कितना ही प्रजा का उत्थान करूँ या प्रजा के प्रयोजनों को सिद्ध करूँ। सब लोगों का हितों को साधना ही मेरा परम कर्तव्य है।
10. और इस सबका मूल यही है कि प्रजा का उत्थान हो तथा उनके प्रयोजनों की सिद्धि हो। कोई भी ऐसा कार्य राजकार्य नहीं है
11. जो सब लोगों के हित से बढ़कर हो। जो कुछ मैं पराक्रम (परिश्रम) इस दिशा में करता हूँ, उस सबका प्रयोजन यही है कि मैं प्राणियों के प्रति जो ऋण मुझ पर है उससे मैं मुक्त हो जाऊँ।

12. इस लोक में मैं इनको सुखी कर सकूँ और ये लोग मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग लोक की प्राप्ति करें। इस कारण इस प्रयोजन के लिये
13. यह धर्मलिपि लिखवाई है कि यह चिरस्थायी रहे तथा मेरे पुत्र, पौत्र तथा प्रपौत्र
14. सभी लोगों के कल्याण के लिये प्रयत्नशील होवें। यह कार्य उच्चकोटि के पराक्रम के बिना दुष्कर है।

टिप्पणियाँ—

1. वचम्हि—पशुशाला अथवा अश्वशाला।
2. प्रतिवेदना—राज्य में चल रही प्रजा की गतिविधियां, प्रजाननों की असन्तुष्टता के समाचार अथवा राज्य अधिकारियों के कार्यों का विवरण।
3. प्रतिवेदक—गुप्तचर जो सभी राज्य की सूचनाएं अशोक तक पहुँचाते थे।
4. ओरोधनम्हि—अशोक का अन्तःपुर अथवा उसकी रानियों का निवास स्थान।
5. दापकं—दान देने की आज्ञा
6.. वैनीतके—पूजाघर।
7. उयानेसु—उद्यान।
8. उस्टानम्हि—प्रजा का सब प्रकार से उत्थान।
9. अथसंतीरणा—प्रयोजनों की सिद्धि, प्रजा क लाभ के लिये अशोक द्वारा किये गए कार्य फलीभूत हों।
10. यह अभिलेख तिथि विहीन है।

गिरनार सप्तम शिला अभिलेख

1. देवानंपियो पियदसि राजा सर्वत इछति सवे पासंडा वसेयु सवे ते सयमं च
2. भावसुधि च इछति। जनो तु उचावचछंदो उचावचरागो ते सर्वं व कासंति एकदेसं व कसंति।
3. विपुले तु पि दाने यस नास्ति सयमे भावसुधिता व कतंञता व दढभतिता च निचा बाढं

संस्कृत-छाया

1. देवानांप्रियः प्रियदर्शी राजा सर्वत्र इच्छति सर्वे पाषण्डाः वसेयुः। सर्वे ते संयमं च
2. भावशुद्धिं च इच्छन्ति। जनः तु उच्चावचच्छन्दः उच्चावचरागः। ते सर्वं वा काङ्क्षन्ति एकदेशं वा करिष्यन्ति।
3. विपुले तु आपे दाने यस्य नास्ति संयमः भावशुद्धिः वा कृतज्ञता वा, दृढभक्तिता, च (सः) नीचः बाढम्।।

(हिन्दी अनुवाद)

1. देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा चाहते हैं कि सर्वत्र (उनके राज्य में) सभी पाषण्ड अर्थात् धार्मिक सम्प्रदाय विद्यमान रहें।
2. क्योंकि वे सभी सम्प्रदाय संयम व भावशुद्धि चाहते हैं, परन्तु मनुष्य तो ऊँची या नीची इच्छावाले तथा उच्च और निम्नकोटि के राग वाले होते हैं इस कारण वे सब कुछ (प्राप्त करना) चाहते हैं परन्तु वे एक अंश में ही धर्माचरण का पालन करते हैं।
3. विपुल दान देने वाले जिस व्यक्ति में भी संयम, भावशुद्धि, कृतज्ञता और दृढभक्ति नहीं है वह निश्चय से नीच ही है।

टिप्पणियां—

1. पाषण्ड—वे सभी धार्मिक मत-मतान्तर जो अशोक के समय प्रचलित थे तथा जिनको राज्याश्रय भी प्राप्त था। तुलना करे-खारवेल के अभिलेख के अनुसार वह भी 'सर्वपाषण्डपूजक' था।

2. उच्चावचछन्दो—ऊँची अथवा श्रेष्ठ व अवच अर्थात् निम्नकोटि की इच्छाऐं।
3. उच्चावचराग:—कम या अधिक सांसारिक पदार्थों में आसक्ति।
4. विपुले तु निचा बाढम्—''जिसके पास विपुल दान नहीं है परन्तु संयम, भावशुद्धि, कृतज्ञता तथा दृढ़भक्ति है—वह निश्चिय ही अच्छा है''—ऐसा अर्थ कदापि अभीष्ट नहीं हो सकता।
5. यह अभिलेख तिथि विहीन है।
6. सयमं—इन्द्रियों को विषयों से परे हटाकर उनके व्यवहार पर नियन्त्रण।
7. भावसुधि—विचारों की शुद्धता, सबके कल्याण की भावना तथा एक दूसरे का यथायोग्य सम्मान करना।
8. उचावचछंदो—कम या अधिक आवश्यकताओं वाले, मन की इच्छाओं वाले।
9. विपुले.....दाने—प्रभूत दानराशि।
10. दढ़मतिता—दृढ़भक्ति, अटूट विश्वास।
11. कतंञता—कृतज्ञता, किसी व्यक्ति द्वारा किये हुए उपकार करे न भुलाना।
12. पासंडा—विभिन्न धार्मिक सम्प्रदाय जैसे, वैदों की शिक्षाओं को मानने वाले, महावीर के अनुयायी, बुद्ध के अनुयायी तथा इसी प्रकार अन्यान्य ढंग से ईश्वर प्राप्ति व मुक्ति के साधनों में विश्वास करने वाले लोगों का समूह। अशोक सभी सम्प्रदायों का सम्मान करता था यह इस अभिलेख से भली भांति स्पष्ट है। बलात् उसने किसी भी धर्म अथवा सम्प्रदाय को अपनी प्रजा पर नहीं थोपा।

गिरनार अष्टम शिला अभिलेख

1. अतिकातं अंतरं राजानो विहारयातां ञयासु एत मगव्या अञानि च एतारिसनि
2. अभीरमकानि अहुंसु सो दवानंप्रियो पियदसि राजा दसवसाभिसितो संतो अयाय संबोधिं
3. तेनेसा धंमयाता एतयं होति बाम्हणसमणानं दसणे च दाने च थैरानं दसणे च
4. हिरंणपटिविधानो च जानपदस च जनस दस्पनं धंमानुसस्टी च धंमपरिपुछा च
5. तदोपया एसा भुय रति भवति देवानंप्रियस प्रियदसिनो राञो भागे अंञे।

संस्कृत-छाया

1. अतिक्रान्तम् अन्तरं राजानः विहारयात्रां ययुः। अत्र मृगया, अन्यानि च एतादृशानि
2. अभिरमकाणि अभूवन्। तद् देवानांप्रियः प्रियदर्शी राजा दशवर्षाभिषिक्तः सन् इयाय सम्बोधिम्।
3. तेनैषा धर्मयात्रा। अत्रेदं भवति ब्राह्मणश्रमणानां दर्शनं च, दानं च, स्थविराणां दर्शन च,
4. हिरण्यप्रतिविधानं च, जनस्य दर्शनं धर्मानुशस्तिः च, धर्मपरिपृच्छा च
5. तदुपगा। एषा भूयः रतिः भवति देवानांप्रियस्य प्रियदर्शिनः राज्ञः भागः अन्यः।

(हिन्दी अनुवाद)

1. अतीत काल में (बहुत वर्षों से) राजा लोग विहार यात्रा के लिये जाया करते थे। यहां (इन विहार यात्राओं में) शिकार तथा इसी प्रकार के अन्य
2. आमोद प्रमोद हुआ करते थे। देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा ने अपने राज्याभिषेक के दस वर्ष पश्चात् संबोधि के मार्ग का अनुसरण किया।
3. तब से उसने इस धर्म यात्रा का श्रीगणेश किया। इस प्रकार की यात्रा में यह सब कुछ होता है जैसे—ब्राह्मणों व श्रमणों का दर्शन करना और उन्हें दान देना, वृद्धों का दर्शन करना और
4. उन्हें सुवर्णदान देना जनपद के निवासियों से मिलना तथा उन्हें धर्मोपदेश देना तथा उनके समीप जाकर उनसे धर्मसम्बन्धी चर्चा करना।

5. इसके अतिरिक्त (इन यात्राओं में) देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा की बार-बार रति होती है अर्थात् वे बार-बार आनन्दित होते हैं।

टिप्पणियां—

1. विहारयाता— जैसा कि नाम से स्पष्ट है ऐसी यात्रायें जिनमें केवल मनोविनोद के लिए ही कार्यक्रम होते थे।
2. मगव्या— मृगया जंगली जानवरों का शिकार करना।
3. दसवसाभिसितो— यह तिथि विहार यात्राओं का धर्मयात्राओं में परिवर्तित होने की ओर संकेत करती है। यह तिथि इस लेख के लिखवाने की तिथि नहीं है।
4. धंमानुसस्टी— धार्मिक प्रवचन।
5. धंमपरिपुछा— सत्यासत्य का निर्णय करने के लिये धार्मिक शास्त्रार्थ। इस प्रकार की 'धंमपरिपुछा' को 'सर्वधर्म सम्मेलन' कहना अधिक समीचीन होगा।
6. धंमयाता— सर्वधर्म सम्मेलन, जहां सभी सम्प्रदायों के मानने वाले मिलकर दार्शनिक चर्चायें करते थे। इस धर्मयात्रा में अशोक व उसकी प्रजा यथाशक्ति दान भी दिया करती थी। परसम्प्रदाय की निन्दा 'धर्मयात्राओं' का उद्देश्य कदापि नहीं थी, कालान्तर में इन धर्मयात्राओं ने धर्मसम्मेलनों का स्वरूप ग्रहण कर लिया। हर्षवर्धन ने इसी का अनुसरण करते हुए ह्यूनसांग की अध्यक्षता में एक विराट धार्मिक सम्मेलन का आयोजन किया था। संत व धार्मिक गुरु प्रजाजनों को सन्मार्ग पर चलने व चरित्र-निर्माण की शिक्षा ही विशेष रूप से इन सम्मेलनां में दिया करते थे।
7. सम्बोधिं इयाय— गौतम बुद्ध की शिक्षाओं का अध्ययन किया।
8. प्रस्तुत अभिलेख यह भलीभांति स्पष्ट उल्लेख करता है कि अशोक ब्राह्मणों, जैनों श्रमणों व बौद्धसन्यासियों का समान रूप से सम्मान करता था।
9. दसवसाभिसितो संतो— यह धर्म यात्राएं अशोक ने अपने राज्यारोहण के दस वर्ष पूरे होने पर आरम्भ की थीं।
10. यह लेख भी तिथि विहीन है।

गिरनार नवम शिला अभिलेख

1. देवानंपियो प्रियदसि राजा एव आह अस्ति जनो उचावचं मंगलं करोते आबाधेसु वा
2. आवाहवीवाहेसु वा पुत्रलाभेसु वा प्रवासंम्हि वा एतम्हि च अञम्हि च जनो उचावचं मंगलं करोते।
3. एत तु महिडायो बहुकं च बहुविधं च छुदं च निरथं च मंगलं करोते। त कतव्यमेव तु मगलं। अपफलं तु खो
4. एतरिस मंगलं। अयं तु महाफले मंगले य धंममंगले त [ते] त दासभतकम्हि सम्यप्रतीपती गुरूनं साधु
5. पाणेसु सयमो बम्हणसमणानं साधु दानं एत च अञ च एतारिसं धंममंगलं नाम त वतव्यं पिता व
6. पुत्रेन वा भात्रा व स्वामिकेन वा इदं साधु इदं कतव्यं मंगलं आव तस अथस निस्टानाय अस्ति च पि वुतं
7. साधु दन इति न तु एतारिसं अस्ति दानं व अन [मु] गहो व यारिसं धंमदानं व धमनुगहो व त तु खु मित्रे न व सुहदयेन वा
8. ञतिकेन व सहायन वा ओवादितव्यं तम्हि तम्हि पकरणे इदं कचं इदं साध इति इमिना सक
9. स्वर्गं आराधेतु इति कि च इमिना कतव्यतरं यथा स्वगारधी

संस्कृत-छाया

1. देवानांप्रियः प्रियदर्शी राजा एवम् आह—अस्ति जनः, उच्चावचं मङ्गलं करोति। अबाधेषु वा,
2. आवाहविवाहेषु वा, पुत्रलाभेषु वा, प्रवासे वा एतस्मिन् च अन्यस्मिन् च जनः उच्चावचं मङ्गलं करोति।
3. अत्र तु महिलाः बहुकं च बहुविधं च क्षुद्रं च, निरर्थकं च मङ्गलं कुर्वन्ति। तत् कर्तव्यमेव तु मङ्गलम् अल्पफलं तु खलु
4. एतादृशं मङ्गलम्। इदं तु महाफलं मङ्गलं, यत् धर्ममङ्गलम्। तत्रैतत् दासभृतकेषु

सम्यक् प्रतिपत्तिः, गुरूणाम् अपचितिः साधुः,

5. प्राणेषु संयमः साधुः ब्राह्मणश्रमणानां साधु दानम्— एतत् च अन्यत् च एतादृशं धर्ममङ्गलं नाम। तत् वक्तव्यं पित्रा वा,

6. पुत्रेण वा, भ्रात्रा वा, स्वामिकेन वा— इदं साधु, इदं कर्तव्यं मङ्गलं यावत् तस्य अर्थस्य निष्ठानम्। अस्ति च अपि उक्तं—

7. साधु दानम् इति। न तु एतादृशम् अस्ति दानं वा अनुग्रहः वा यादृशं धर्मदानं वा धर्मानुग्रहः वा तत् तु खलु मित्रेण वा सुहृदयेन वा,

8. ज्ञातिकेन व सहायेन वा अववदितव्य तस्मिन् तस्मिन् प्रकरणे— इदं कृतम्, इदं साधु इति अनेन शक्यः

9. स्वर्गः आराधयितुम् इति। किं च अस्मात् कर्तव्यतरं यथा स्वर्गाराधना।

(हिन्दी अनुवाद)

1. देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा ने ऐसा कहा है— ऐसे लोग हैं जो नाना प्रकार के मङ्गलाचार करते है विपत्तियों के आने पर अथवा

2. पुत्र के विवाह अथवा पुत्री के विवाहों में, पुत्र की प्राप्ति होने पर, प्रवास करने के समय अथवा इसी प्रकार के अनेकानेक अवसरों पर लोग नाना प्रकार के मंगलाचार (बाधाओं को दूर करने के लिये पूजा, टोने व टोटके इत्यादि) करते हैं।

3. इन उपरोक्त अवसरों पर स्त्रियां अनेक बार नाना प्रकार के तुच्छ एवं निरर्थक मङ्गलाचार किया करती हैं। यह (मङ्गलाचार) तो करना ही चाहिए परन्तु ऐसे मङ्गलाचार निश्चय ही अल्प फल देने वाले होते हैं (इनसे कोई विशेष लाभ नहीं होता)।

4. परन्तु धर्म का जो मङ्गलाचार है वह महान् फल को देने वाला है। ऐसे (धार्मिक) मङ्गलाचारों में दासों तथा सेवकों के प्रति यथोचित व्यवहार तथा गुरुओं का आदर अच्छा होता है।

5. प्राणियों के (वध के) प्रति संयम भाव रखना अच्छा है, ब्राह्मणों व श्रमणों को दान देना अच्छा हैं और ऐसा ही अन्य सब कुछ धर्ममङ्गल कहलाता है। इसका उपदेश पिता द्वारा (पुत्रों) को करना चाहियें।

6. पुत्र, भाई व स्वामी भी क्रमशः, पिता, भाई व सेवकों को इसी प्रकार

समझावें कि यह इस प्रकार का कार्य अच्छा है और अभीष्ट प्रयोजन की सिद्धि तक इसी प्रकार के मङ्गलाचार करने चाहिएँ। यह भी कहा गया है

7. कि दान देना अच्छा है। कोई भी दान या अनुग्रह (उपकार) ऐसा नहीं है जैसा कि धर्मदान या धर्मोपकार है। इस कारण मित्र अथवा सुहृदय कुटुम्बी और सहायक को विभिन्न अवसरों पर यह बताना चाहिए कि अमुक कार्य करने योग्य है तथा अमुक कार्य अच्छा है तथा यह इस प्रकार कार्य करने से

8. स्वर्ग की प्राप्ति हो सकती है। स्वर्ग की प्राप्ति से बढ़कर और अन्य क्या प्रापणीय इष्ट वस्तु हो सकती है।

टिप्पणियां—

1. उचावचंमंगलं-सार्थक एवं निरर्थक मङ्गलाचार, पूजा व सम्मान करना सार्थक मङ्गलाचार है, तथा जीवहिंसा करके बलि इत्यादि निरर्थक मङ्गलाचार है।
2. **धर्ममंगले**—'मनु द्वारा प्रोक्त धर्म के दस लक्षणों' धृति-क्षमा-दम-इत्यादि मानव जीवन को ऊपर उठाने वाले माङ्गलिक कार्य
3. **सम्यप्रतीपती**— सम्यक् प्रतिपत्ति-सामान्य शिष्टाचार का पालन करना।
4. **धर्मदानं**— धर्मदानम्-धर्म सम्बन्धी कथा व प्रवचन
5. **धंमानुगहो**-दानादि।
6. यह लेख भी तिथि विहीन है।

गिरनार दशम शिला अभिलेख

1. देवानंप्रियो प्रियदसि राजा यसो व कीति व न महाथावहा मञते अञत तदात्पनो दिघाय च मे जनो
2. धंमसुस्रसा सुस्रुसता धंमवुतं च अनुविधियतां एतकाय देवानंपियो पियदसि राजा यसो व किति व इछति
3. यं तु किचि परिमते देवानं प्रियदसि राजा त सवं पारत्रिकाय किंति सकले अपपरिस्रवे अस एस तु परिसेव य अपुंञं
4. दुकरं तु खो एत छुतकेन व जनने उसेटन व अञत अगेन पराकमेन सवं परिचजित्पा एत तु खो उसटेन दुकरं

संस्कृत-छाया

1. देवानंप्रियः प्रियदर्शी राजा यशः वा, कीर्ति वा न महार्थवहांमन्यते अन्यत्र अस्मात्, [तद्यथा] तदात्वे दीर्घाय च मे जनः
2. धर्मशुश्रूषां शुश्रूषतां, धर्मवृत्तं च अनुविधत्ताम्। एतस्मै देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजा यशः वा, कीर्ति वा इच्छति।
3. यत् तु किञ्चित् परिक्रमते देवानांप्रियः प्रियदर्शी राजा, तत् सर्वं पारत्रिकाय किमिति सकलः [लोकः] अल्पपरिस्रवः स्यात्। एषः तु परिस्रवः, यत् अपुण्यम्
4. दुष्करं तु खलु एतत् क्षुद्रकेण वा जनेन, उच्छ्रितेन (उत्कृष्टेन) वा अन्यत्र अग्रयात् पराक्रमात् सर्वं परित्यज्य। एतत् तु खलु उच्छ्रितेन (उत्कृष्टेन) दुष्करम्।

(हिन्दी अनुवाद)

1. देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा (अपने) यश व कीर्ति को बहुत अधिक महत्त्व प्राप्त कराने वाले नहीं मानते अपितु (इससे अधिक) यह मानते हैं कि आज तथा आने वाले समय में से दीर्घकाल तक मेरे प्रजाजन
2. धर्म की सेवा, करने को उद्यत होवें तथा धर्म के व्रत का पालन करें। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिये देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा अपना यश व कीर्ति चाहते हैं।
3. देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा जो भी पराक्रम करते हैं वह सब परलोक के

लिये ही है जिससे कि सब लोग कुछ न कुछ दोषरहित हो जावें। जो पुण्य नहीं है वही दोष है।

4. चाहे व्यक्ति छोटा हो अथवा बड़ा—उन सभी के लिये सब कुछ त्याग करना अथवा उत्तमकोटि का पराक्रम किये बिना, यह पुण्य कार्य करना अत्यन्त कठिन है। यह कार्य बड़े आदमी के लिये तो और भी कठिन है।

टिप्पणियां—

1. अपपरिस्रवे—अल्पपरिस्रव (कम फिसलाहट वाला) माया, ममता मोह, लालच इत्यादि जो मनुष्य को सन्मार्ग से फिसलाकार कुमार्ग पर ले जाते हैं।
2. उसटेन-उत्सृतेन अथवा उत्कृष्टेन-सामर्थ्यवान व ऐश्वर्यशाली पुरुष, बड़ा आदमी।
3. छुदकेन—अज्ञानी व्यक्ति अथवा वह व्यक्ति जिसे पढ़ने लिखने का उचित अवसर नहीं मिला है, अथवा निम्नकोटि के कार्य करने वाले उसके द्वारा।

गिरनार एकादश शिला अभिलेख

1. देवानंप्रियोपे पियदसि राजा एवं आह नास्ति एतारिसं दानं यारिसं धंमदानं धंमसंस्तवो वा धंमसंविभागो वा धंमसंबधो व
2. तत इदं भवति दासभतकम्हि सम्यप्रतिपती मातरि पितरा-साधु सुस्रुसा मितसस्तुतञातिकानं बाम्हणस्रमणानं साधुदान
3. प्राणानं अनारंभो साधु एत वतव्यं पिता व पुत्रेन व भाता व मितसस्तुतञातिकेन व आव पटीवेसियेहि इद साधु इद कतव्यं
4. सो तथा करु इलोकचस आरधा होति परत च अंनंतं पुञं भवति तेन धंमदानेन

संस्कृत-छाया

1. देवानांप्रियः प्रियदर्शी राजा एवम् आह— नास्ति एतादृशं दानं यादृशं धर्मदान, धर्मसंस्तवः वा, धर्मसंविभागः वा, धर्मसंबन्धो वा।
2. तत्र इदं भवति दासभृतकेषु सम्यक्-प्रतिपत्तिः मातरि पितरि साधु-शुश्रूषा, मित्र-संस्तुत-ज्ञातिकेभ्यः ब्राह्मणश्रमणेभ्यः साधुदानं,
3. प्राणानाम् अनालम्भः साधुः। एतत् वक्तव्यं पित्रा वा पुत्रेण वा भ्रात्रा वा मित्रसंस्तुतज्ञातिकेन वा, यावत् प्रतिवेशिकैः इदं साधु इदं कर्तव्यम्।
4. तत् तथा कृते इह-लौकिकस्य आराधना भवति, परत्र च अनन्तं पुण्यं भवति [तेन] धर्मदानेन।

(हिन्दी अनुवाद)

1. देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा ने इस प्रकार कहा है—(कोई) इस प्रकार का दान नहीं है जैसा कि धर्म का दान है, या धर्म की प्रशंसा है, या धर्म में साझीदार बनना है अथवा धर्म के द्वारा मित्रता स्थापित करना है।
2. वहाँ (धर्म में) यह होता है कि दासों व सेवकों के साथ यथोचित आदरपूर्वक व्यवहार किया जाय, माता व पिता की अच्छी प्रकार से सेवा की जाय। मित्रों, सुपरिचितों, एवं बन्धु बान्धवों को, ब्राह्मणें एवं श्रमणों को दान देना अच्छा है (श्रेयस्कर है).

3. प्राणियों का वध न किया जाय। यह (बात) पिता, पुत्र, भाई, मित्र, सुपरिच्नित-बान्धव व पड़ोसी सभी के द्वारा बताई जाय कि अमुक कार्य अच्छा है और यही कार्य करना चाहिये। जो ऐसा करता है वह ऐसा करने से इस लोक की आराधना (सेवा) करता है और हर इस प्रकार के धर्मदान से परलोक में उसे अनन्त पुण्य प्राप्त होता है।

टिप्पणियां—

1. धंर्मदानं— धार्मिक उपदेश
2. धंमसस्तवो— धर्म की प्रशंसा
3. धंमसंविभागो— मिलकर धर्म कमाना
4. धंमसंबन्धो— मानवता के नाते धर्मभाई तथा धर्मबहिन जैसे सम्बन्ध बनाना।
5. सम्यप्रतिपती-सम्यक् प्रतिपत्ति अर्थात् यथायोग्य आदर करना।
6. अनारंभो-अनालम्भन-हिंसा का अभाव।
7. पटीवेसियेहि-प्रतिवैशिकैः— पड़ोसियों के द्वारा।
8. पुइञं— पुण्य
9. इलोकस आरध— इस लोक का भलीभांति भोग।
10. परत— परलोक
11. यह लेख तिथि विहीन है।

गिरनार द्वादश शिला अभिलेख

1. देवानंपिये पियदसि राजा सवपासंडानि च पवजितानि च घरस्तानि च पूजयति दानेन च विविधाय च पूजाय पूजयति ने
2. न तु तथा दानं व पूजा व देवानंप्रिय मंञते यथा किति सारवढी अस सवपासंडानं सारवढी तु बहुविधा
3. तस तु इदं मूलं य वचिगुती किंति आत्पपसंड पूजा व परपासंड गरहा व नो भवे अपकरणम्हि लहुका व अस
4. तम्हितम्हि प्रकरणे पूजेतया तु एव परपासंडा तेन तेन प्रकरणेन एवं करुं आत्पपासंडं व वढयेति परपासंडस च उपकरोति
5. तदंञथा करोतो आत्पपासंडं च छणति परपासंडस च पि अपकरोति। यो हि कोचि आत्पपासंडं पूजयति परपासंडं व गरहति
6. सवं आत्पपासंडभतिया किंति आत्पपासंडं दीपयेम इति सो च पुन तथ करातो आत्पपासंडं बाढतरं उपहनाति त समवायो एव साधु
7. किंति अंञमंञस धंमं स्रुणारु च सुसुंसेर च एवं हि देवानं प्रियस इछा किंति सवपासंडा बहुस्रुता च असु कलाणागमा च असु
8. ये च तत तत प्रसंना तेहि वतव्य देवानंपियो नो तथा दानं व पूजां व मंञते यथा, किंति सारवढी अस सर्व पासडानं बहकं च एताय
9. अथा व्यापता धंममहामाता च इथीझखमहामाता च अंञे च निकाया अयं च एतस फल य आत्पपासंडवढी च होति धंमस च दीपना

संस्कृत-छाया

1. देवानांप्रियः प्रियदर्शी राजा सर्वपाषडान् च प्रव्रजितान् च गृहस्थान् च पूजयति, दानेन च विविधया च पूजया पूजयति एनान्
2. न तु तथा दानं वा पूजां व देवानांप्रियः मंञते तथा किमिति सारवृद्धिः स्यात् सर्वपाषण्डानाम्। सारवृद्धिः तु बहुविधा,
3. तस्याः तु इदं मूलं, यत् वचो गुप्तिः। किमिति ? आत्म पाषण्ड पूजा वा, परपाषण्डगर्हा वा नो भवेत् अप्रकरणे, लघुका वा स्यात्
4. तस्मिन् तस्मिन् प्रकरणे। पूजयितव्याः तु एव परपाषंडाः, तेन तेन प्रकरणेन। एवं कुर्वन् (जनः) आत्मपाषण्डं च वर्धयति, परपाषण्डस्य च उपकरोति;

5. तदन्यथा कुर्वाणः आत्म पाषण्डं च क्षिणोति, पर पाषण्डस्य च अपि अपकरोति। यः हि कश्चित् आत्म पाषण्डं पूजयति, पर-पाषण्डं वा गर्हति
6. सर्वम् आत्म-पाषण्ड-भक्त्या, किमिति आत्म-पाषण्डं दीपयेम इति। सः च पुनः तथा कुर्वाणः आत्म-पाषण्डं बाढतरम् उपहन्ति। तत, समवायः एव साधुः,
7. किमिति (जनाः) अन्योन्यस्य धर्म शृण्वीरन् च, शुश्रूषेरन् च। एवं हि देवानांप्रियस्य इच्छा, किमिति सर्वपाषण्डाः बहुश्रुताः च स्युः, कलयाणागमाः च स्युः
8. ये च तत्र तत्र प्रसन्नाः, तेभ्यः वक्तव्यम् देवानांप्रियः नो तथा दानं वा पूजां वा मन्यते यथा, किमिति ? सार-वृद्धिः स्यात् सर्व पाषण्डानाम्। बहुकाः च एतस्मै
9. अर्थाय व्यापृताः धर्ममहामात्राः च स्त्र्यध्यक्षमहामात्राः च वचभूमीका च वज्रभूमिकाः च अन्ये च निकायाः। इदं च एतस्य फलं यत् आत्मपाषण्ड-वृद्धिः च भवति धर्मस्य च दीपना।

(हिन्दी अनुवाद)

1. देवानंप्रिय प्रियदर्शी राजा सब पाषण्डों (धार्मिक सम्प्रदायों) व सन्यासियों तथा गृहस्थियों का सम्मान करते हैं तथा दान व विविध प्रकार की पूजा से उनका सम्मान करते हैं।
2. दान व पूजा को देवानांप्रिय उतना महत्त्व नहीं देते जितना कि इस बात को कि सब सम्प्रदायों के सार की वृद्धि होवे। सार वृद्धि कई प्रकार से हो सकती है।
3. पर उसका यह मूल है कि जो वाणी का संयम है। यह (वाणी का संयम) क्या है? केवल व्यर्थ में ही अपने ही पाषण्ड (सम्प्रदाय) का सम्मान न दूसरे के पाषण्ड (सम्प्रदाय) की निन्दा न होने पावे, यदि होवे तो अत्यल्प ही
4. होवे वह भी प्रकरण विशेष में। हर अवस्था में दूसरे के (धर्मों) सम्प्रदायों का सम्मान ही करना चाहिये। इस प्रकार करने से मनुष्य अपने सम्प्रदाय का विस्तार करता है तथा दूसरे सम्प्रदाय का भला ही करता है।
5. इसके विपरीत आचरण करता हुआ व्यक्ति अपने सम्प्रदाय की (जड़)

काटता है और दूसरे सम्प्रदाय की हानि करता है। यदि कोई अपने सम्प्रदाय की पूजा करता और दूसरे के सम्प्रदाय की निन्दा करता है,

6. क्या वह सब कुछ अपने सम्प्रदाय की भक्ति के कारण करता है कि इससे उसके सम्प्रदाय का गौरव बढ़े। वस्तुत बारम्बार ऐसा करता हुआ वह व्यक्ति अपने सम्प्रदाय को बुरी तरह हानि पहुँचाता है। इस कारण् मेल जोल (से रहना) ही अच्छा है।

7. इससे क्या तात्पर्य है ? एक दूसरे के धर्म को सुनें व एक दूसरे की सेवा करें। यही देवानांप्रिय की इच्छा है कि सभी सम्प्रदाय (के लोग) बहुश्रुत होवें और कल्याणकारी ज्ञान से युक्त हों।

8. जो लोग अपने अपने सम्प्रदाय में प्रसन्न हैं; उन सभी को कहा जाय कि देवानांप्रिय दान तथा पूजा को उतना महत्त्व नहीं देते जितना कि इस बात को कि सब सम्प्रदायों के सार की वृद्धि होवे और इसी प्रयोजन के लिये बहुत-से

9. धर्ममहामात्र, स्त्रीमहामात्र, व्रजभूमिकं तथा इसी प्रकार के अन्य अधिकारी नियुक्त किये गये हैं। इसका यही सब कुछ फल है कि अपने अपने सम्प्रदायों की वृद्धि भी होती है और धर्म का प्रभाव भी बढ़ता है।

टिप्पणियां—

1. सवपासण्डानि— अशोक के समय विद्यमान सभी धार्मिक सम्प्रदाय जिनमें वैदिकमतानुयायिओं के साथ साथ जैन, बौद्ध, शैव, कापालिक इत्यादि मत सम्मिलित हैं।
2. सारवढ़ी— धर्म के सार में वृद्धि
3. वचिगुती (वचोगुप्तिः)-मितभाषी होना, कठोर वाणी का प्रयोग न करना, किसी को भी अपने वचनों से दुःख न पहुँचाना, यही वाणी का संयम है।
4. अपकरणम्हि— अप्रकरणे— व्यर्थ में ही, बिना किसी प्रयोजन के
5. आत्पपासंडभतिया— अपने सम्प्रदाय की (अन्ध भक्ति) के कारण।
6. समवायो— दूसरे की सुनकर तथा अपनी सुनाकर सर्वहितकारी आचरण करना, न दूसरे के धर्म की निन्दा करना और न बलात् अपना धर्म किसी पर लादना ही समवाय है। यही सामञ्जस्य भी है।
7. कलाणागमा— अन्धविश्वासों से मुक्त तथा सबको कल्याणमार्ग पर ले जाना वाला शान या ज्ञान चर्चा।
8. इथीझखमहामाता-स्त्र्यक्षमहामात्राः— वे महामात्य जो राजनिवास में रहने

वाली स्त्रियों को धार्मिक उत्सवों पर अथवा धार्मिक विषयों में विविध धर्माचरण तथा दानादि का उपदेश देते थे तथा दानादि कार्य्यों की व्यवस्था भी करते थे। यह मानना उपयुक्त प्रतीत नहीं होता कि 'इथीझखमहामाता' अर्थात् स्त्र्यक्षमहामात्रों का कार्य केवल अशोक की रानियों के धार्मिक कार्यकलापों तक ही सीमित नहीं था, अपितु सभी स्त्रीजनों को धार्मिक उपदेशादि देना था। इलाहाबाद में स्थित अशोक स्तम्भ राजमहिषी तथा राजकुमार तीवर माता कारुवाकी (चारुवाक्) के दान के विषय में अशोक का आदेश द्रष्टव्य है जिसमें कहा गया है कि रानी द्वारा दिया गया दान, आम्रवाटिका, उद्यान व दानादि रानी का ही दान माना जाय।

गिरनार त्रयोदश शिला अभिलेख

1. [देवानंपियेन पियदसिना रा] ञो कलिंगा विज[ता] [अपवढे] सतसहस्रमात्रं तत्रा हतं बहुतावतकं मत तत पछा अधुना लधेसु तीवो धंमवायो
2. .... [अनुस] यो देवानंप्रियस विज ...... वधो व मरणं व अपवाहो व जनस त बाढं वेदनमतं च गुरुमतं च देवानंपि [य] स
3. ....बाम्हणा व समणा व अञे .... [सुसु] सा मात्रि पितरि सुसुंसा गुरुसुसुंसा मितसंस्ततसहायञातिकेसु दास [भतकेसु] ....
4. ...–अभिरतानं व विनिखमण येसं वा प [स] हाय-ञातिका व्यसनं प्रापुणति तत सो पि तेस उसघातो हाति पटीभागो चेसा सव [मनुसानं]...
5. .... [अ] स्ति इमे निकाया अञत्र योनेस.... [जनपद] म्हि यत्र नास्ति मनुसान एकतरम्हि पासंडम्हि न नाम प्रसादो यावतको जनो तदा
6. ...... [सह] स्रभागो व गरुमतो देवानं [पियस्] ..... न य सकं छमितवे या व पि अटवियो देवानपियस पिजिते पाति
7. ..... चते तेसं देवानंपियस .....सवभूतानं अछति च सयमं - च समचैरं च मादव च
8. ....लघो..... [देवा] नंप्रियस इध सवेसु च.... योनराज परं च तेन चत्पारो राजानो तुरमायो च अंतेकिन च मगा च
9. ..... इध राजविसयम्हि योनकंबो [जेसु] ...... [अं] ध्रपारिंदेसु सवत देवानंप्रियस धंमानस्टिं अनुवतरे यत पि इति
10. ...... [विध]नं धमानुसस्टिं च धमं अनुविधियरे..... विजयो सवथा पुन विजयो पीतिरसो सा लधा सा पीती होति धंमविजयम्हि
11. ...... [देवानंप्रि] यो एताय [अथा]य अयं धंम-[लिपि]... [न] वं विजयं मा विजयव्यं मंञा सरसके एव विजये छाति च
12. ...... [इलो] किको च पारलोकिको.....इलोकिका च पारलोकिका च

संस्कृत-छाया

1. देवानांप्रियेण प्रियदर्शिना राज्ञा कलिङ्गाः विजिताः। .... अपोढं, शतसहस्रमात्रं तत्र हतं, बहुतावत्कं मृतम्। ततः पश्चात् अधुना लब्धेषु कलिङ्गेषु तीव्रः धर्म-वातः

2. ...... [अनु] शयः देवानांप्रियस्य विजि [त्य] ... वधः वा, मरणं वा अपवाहः वा जनस्य, तत् बाढं वेदनीयमतं च, गुरुमतं च देवानांप्रियस्य
3. ....ब्राह्मणाः वा, श्रमणाः वा, अन्ये....शुश्रूषा, मातरि पितरि शुश्रूषा, गुरुशुश्रूषा, मित्रसंस्तुतसहायज्ञातिकेषु दासभृ [तकेषु].....
4. ....अभिरक्तानां वा विनिष्क्रमणम्। येषां वा अपि..... सहाय ज्ञातिकाः व्यसनं प्राप्नुवन्ति, तत्र तत् अपि तेषां उपघातः भवति। प्रतिभागः चैषः सर्वमनुष्याणां.....
5. ..... सन्ति इमे निकायाः अन्यत्र यवनेभ्यः ...... जनपदे यत्र नास्ति मनुष्याणाम् एकतरे पाषण्डे न नाम प्रसादः। यावत्कः जनः तदा।
6. ..... सहस्र भागः वा गुरु मतः देवानांप्रियस्य.... न यः शक्यः क्षमितुम्। याः च अपि अटव्यः देवानांप्रियस्य विजिते भवन्ति ( )
7. उच्यते ( ) तेषां देवानांप्रियस्य सर्वभूतानाम् अक्षतिं च संयमं च, समचर्या च, मार्दवं च,
8. लब्धः [देवा] नांप्रियस्य इह सर्वेषु च यवनराजः, परं च तस्मात् चत्वारः राजानः तुलमयः च अन्तेकिनः च, मगः च,
9. इह राजविषये, यवनकम्बो [जेषु] ..... [आ]न्ध्रपारिंदेषु सर्वत्र देवानांप्रियस्य धमानुशिष्टयः अनुवृत्येरन्। यत्र अपि दौत्यं
10. [विधा]नं धर्मानुशिष्टिं च धर्मम् अनुविधीयरन् विजयः सर्वथा पुनः विजयः प्रीति-रसः सः। लब्धा सा प्रीतिः भवति धर्मविजये
11. देवानांप्रियः। एतस्मै अर्थाय इयं धर्मलिपिः नवं विजय मा विजेतव्यं मन्येरन् सदृशे एव विजये क्षान्तिः च
12. ऐहलौकिकः च पारलौकिकः ऐहलौकिका च पारलौकिका च

(हिन्दी अनुवाद)

1. [देवानांप्रिय प्रियदर्शी] राजा के द्वारा कलिङ्ग जीते गए .... एक लाख तो केवल वहां मारे गए, और उससे बहुत अधिक मरे। उसके बाद जबकि कलिंग देश जीत लिये गये हैं, धर्म की हवा–
2. .... (पश्चाताप) देवानांप्रिय को अपनी विजय पर ...... हत्या व मृत्यु अथवा लोगों का देश निष्कासन बहुत अधिक पीड़ादायक तथा देवानांप्रिय को भारी दुःख देने वाला ..... (माना गया है)।
3. ब्राह्मणों, श्रमणों, तथा अन्यों की सेवा.... मता व पिता की सेवा, गुरुजनों

की सेवा मित्रों, परिचितों, सहाय को बन्धुबान्धवों, दास व सेवकों

4. तथा प्रियजनों का निष्क्रमण अर्थात वियोग। जिनके सहायक और बान्धव विपत्ति में फंस जाते हैं, उन्हें भी (उनकी विपत्ति के कारण) चोट पहुँचती है, और यह विपत्ति सभी मनुष्यों के भाग में आती है।

5. और भी बहुत-से ये जन समुदाय है—"यवनों के अतिरिक्त..... (ऐसा कोई स्थान नहीं है) जहां जनपद में मनुष्य एक न एक सम्प्रदाय को मानकर संतुष्ट न होते हों। जितने भी व्यक्ति तब

6. ..... हजारवें भाग का (नाश) भी देवानांप्रिय राजा के लिये दुःख का बहुत बड़ा कारण होगा और वह क्षमा करने के योग्य नहीं हैं देवानां प्रिय (प्रिय दर्शी) के जीते हुए राज्य में जितने भी वनवासी लोग हैं—

7. ...... उनसे कहते हैं कि सब प्राणियों की सुरक्षा, संयम, सब के साथ समान व्यवहार तथा विनम्रता, देवानाप्रिय ने ....

8. उन सब के विषय में प्राप्त की है। जहाँ यवनराजा (आन्तियोक) और उससे परे चार राजा तुलमाय, अंतेकिन (ऐन्टीगोनस) मग तथा ....

9. यहां राजा के राज्य में, यवनों में, काम्बोजो में, आन्ध्रों में तथा पारदों में सर्वत्र ही देवानांप्रिय की धर्मानुशस्तियों (धर्मानुशासनों) की अनुवृत्ति करें, अर्थात् देवानांप्रिय ने धर्ममय जीवन व्यतीत करने के लिये जो नियम प्रचारित किए हैं, उन्हें बार-बार दोहराये, जहाँ-जहाँ भी दौत्य सम्बन्ध हैं।

10. .... के विधान का, धर्मानुशस्ति का तथा धर्म का अनुसरण करें ....(धर्म) विजय सर्वथा फिर विजय वही है जिसमें प्रेम रस है। वह प्रीति धर्म वियज में ही प्राप्त होती है।

11. ...... (देवानांप्रिय ने)। इसी प्रयोजन के लिये यह धर्म लिपि..... (लिखवाई है) कि नया देश जीतकर विजय प्राप्त करनी हैं—ऐसा न मानें। (इसी) प्रकार की (धर्म) विजय में सहनशीलता है और

12. इस लोक से सम्बन्धित तथा परलोक से सम्बन्धित (विजय) तथा इस लोक से सम्बन्धित तथा परलोक से सम्बन्धित (शान्ति प्राप्त हो सकती है)।

टिप्पणियां—

1. कलिंगा विज(ता)—'कलिंग' शब्द का बहुवचन में प्रयोग देश के अर्थ में हुआ है। प्राचीन अभिलेखों (जैसे खारवेल का हाथी गुम्फा लेख) 'त्रिकलिंग' शब्द का व्यवहार कलिंग प्रदेश के तीन भागों कलिंग, मध्यकलिंग तथा

महाकलिंग के लिये, उपलब्ध होता है। नन्दवंश के पतन के साथ ही कलिंग ने स्वतंत्र रहने की घोषणा कर दी थी जिसे अशोक ने जीतकर अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया था।

2. धंमवाय— धर्म प्रचार-किसी भी सम्प्रदाय विशेष का नहीं अपितु जिसका स्वरूप इसी लेख की दूसरी व तीसरी पंक्तियों तथा दिल्ली टोपरा स्तम्भ के दूसरे लेख में, तथा ग्याहरवें शिला अभिलेख में किया गया है।
3. राजविसयम्हि— अशोक के अधीन भूभाग,
4. धमानुसस्टि— धर्मानुशस्ति-धर्म का वास्तविक स्वरूप,
5. प्रस्तुत अभिलेख की प्रति अशोक ने भारत में उन सभी स्थानों पर खुदवाई जहाँ-2 पहले से ही उसने लेख खुदवाये थे। परन्तु इस लेख की प्रति 'कलिंग' में जिस पर अशोक ने विजय प्राप्त की थी, नहीं खुदवाई क्योंकि उसका ऐसा विश्वास था कि यहाँ के लोग बार-2 इस लेख को पढ़ कर दुःखी ही होंगे तथा उनके मन में अशोक के प्रति घृणा व विद्वेष की अग्नि धधकती ही रहेगी। इस अभिलेख के स्थान पर तोसली के महामात्यों को विशेष संदेश भेजा कि वे वहाँ के लोगों के दुःखों को सुनकर उनके दुःख दूर करने का भरसक प्रयत्न करें।
6. यह लेख यद्यपि तिथिविहीन है, ऐसा विश्वास किया जाता है कि राज्य प्राप्त करने के 8 वर्ष बाद अशोक ने कलिङ्ग पर विजय प्राप्त की थी कलिङ्ग विजय के बाद ही अशोक मनःस्थिति व मनोवृत्ति में परिवर्त्तन हो गया था, बौद्ध धर्म व बुद्ध की शिक्षाओं के प्रति उसकी रुचि भी तभी से आरम्भ हुई। शिलालेखों के अतिरिक्त स्तम्भलेखों पर अपने आदेश लिखवाने का विचार भी तब ही आया होगा। लगभग 4 वर्ष बाद उसने शिलाओं पर लेख खुदवाए।

गिरनार चतुर्दश शिला अभिलेख

1. अयं धंमलिपी देवानंप्रियेन प्रियदसिना राञा लेखापिता अस्ति एव
2. संखितेन अस्ति मझमेन अस्ति विस्ततन न च सर्व सर्वत घटितं
3. महालके हि विजतं बहु च लिखितं लिखापयिसं चेव अ[illegible]त च एत क
4. पुन पुन वुतं तस तस अथस माधूरताय किं ति जनो तथा पटिपजेथ
5. तत्र एकदा असमातं लिखितं अस देसं व संछाय कारणं व
6. अलोचेत्पा लिपिकरापरधेन व

संस्कृत-छाया

1. इयं धर्मलिपिः देवानांप्रियेण प्रियदर्शिना राज्ञा लेखिता। अस्ति एव
2. संक्षिप्तेन, अस्ति मध्यमेन, अस्ति विस्तृतेन। न च सर्व सर्वत्र घटितं—
3. महल्लकं हि विजितं, बहु च लिखित, लेखयिष्यामि चैव। अस्ति चं अत्र किञ्चित्
4. पुनः पुनः उक्तं तस्य तस्य अर्थस्थ मधुरतायै किमिति जनो तथा प्रतिपद्येत।
5. तत्र एकदा असमाप्तं लिखितं स्यात् देशं वा संख्याय कारणं वा
6. आलोच्य लिपिकरापराधेन वा।

(हिन्दी अनुवाद)

1. यह धर्म लिपि देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा ने लिखवाई है,
2. यह कहीं संक्षेप में है, कहीं मध्यम विस्तार से है और कहीं (अधिक) विस्तार से है। सब कुछ सब स्थानों पर नहीं आ सका है (नहीं लिखा गया है)।
3. मेरा जीता हुआ राज्य बहुत बड़ा है (इसलिये) मैंने बहुत कुछ लिखवाया है तथा और भी अभी लिखवाऊँगा। और यहाँ (लिखवाने में) कुछ ऐसा (भी) है जो,
4. बार-बार कहा गया है (दुहराया गया है) उस उस कार्य की मधुरता की दृष्टि से कि लोग वैसा आचरण करें
5. वहाँ (लिखित सामग्री में) कुछ अधूरा भी हो सकता है, उसका कारण

देशभेद (स्थानभेद), लेखको संक्षेप में लिखना अथवा लिखने वाले का अपराध समझना।

टिप्पणियां—

1. संखितेन—जहाँ विषय संक्षेप में लिखा गया है।
2. मझमेन—जहां विषय न अधिक संक्षिप्त है और न विस्तृत
3. विस्ततन—जहां विषय अत्यन्त विस्तार से लिखा गया है।
4. महालके—आधीन प्रदेश
5. देशं—राज्य के भिन्न-भिन्न भाग
6. लिपिकरापराधेन—से तात्पर्य प्रतिलिपि बनाने वाले व्यक्ति की असावधानी अथवा देशभेद से उत्पन्न भाषा के परिवर्त्तन से है जिसे लिपिकर ने अपनी बुद्धि के अनुसार अन्यथा लिख दिया हो या खोद दिया हो।

दिल्ली टोपरा प्रथम स्तम्भ अभिलेख

1. देवानंपिये पियदसि लाज हेवं आहा सडुवीसति
2. वस अभिसितेन मे इयं धंमलिपि लिखापिता
3. हिदतपालते दुसंपटिपादये अंनत अगाया धंमकामताया
4. अगाय पलीखाया अगाय सुसूसाया अगेन भयेना
5. अगेन उसाहेना एस चु खो मम अनुसथिया
6. धंमापेखा धंमकामता चा सुवेसुवे वढिता वढीसति चेवा
7. पुलिसा पि च में उकसा चा गेवया चा मझिमा चा अनुविधीयंती
8. संपटिपादयंति चा अलं च पलं समादपयितवे हेमेवा अंत
9. महामाता पि एस हि विधि या इयं धंमेन पालना धंमेन विधाने
10. धंमेन सुखियना धंमेन गोती ति

संस्कृत-छाया

1. देवानांप्रियः प्रियदर्शी राजा एवम् आह
2. वर्षाभिषिक्तेन मया इयं धर्म लिपि लेखिता।
3. ऐहत्रपारत्रं दुःसम्प्रतिपाद्यम् अन्यत्र अग्र्यायाः धर्मकामतायाः
4. अग्र्यायाः परीक्षायाः, अग्र्यायाः शुश्रूषायाः अग्र्यात् भयात्
5. अग्र्यात् उत्साहात्। एषा तु खलु मम अनुशिष्टिः
6. धर्मापेक्षा धर्मकामता च श्वः श्वः वर्धिता, वर्धिष्यते चैव।
7. पुरुषाः अपि च, मे उत्कृष्टाः च गेवकाः च मध्यमाः च अनुविदधति
8. सम्प्रतिपादयन्ति च, अलं च, परं समादापयितुम्। एवमेव अन्त
9. महामात्राः अपि। एष हि विधिः यत् इदं धर्मेण पालनं, धर्मेण विधानं,
10. धर्मेण सुखीयनं, धर्मेण गुप्तिः इति।

(हिन्दी अनुवाद)

1. देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा ने इस प्रकार कहा है। छब्बीस
2. वर्ष अभिषेक के पश्चात् मैंने यह धर्मलिपि लिखवाई है।
3. इस लोक का तथा परलोक (के सुख) की प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है बिना उच्चकोटि के धर्मानुराग के,

4. विशेष (आत्म) परीक्षा के, बड़ी सेवा के बिना तथा बड़े (धर्म) भय के बिना, और
5. उत्तम कोटि के उत्साह के बिना। यह तो निश्चय से मेरी (मेरे द्वारा प्रदत्त) धार्मिक शिक्षा से (प्रजा में) धर्म के
6. प्रति आदर तथा अभिरुचि दिन प्रतिदिन बढे हैं तथा आगे और बढेंगे।
7. मेरे पुरुष (राजकर्मचारी वर्ग), चाहे वे ऊँचे श्रेणी के, निम्न श्रेणी के अथवा मध्यम श्रेणी के आदेश के अनुसार कार्य करते हैं और इस प्रकार आचरण करते हैं कि किसी (चंचल बुद्धि अथवा दुर्विनीत) से भी नियम के अनुसार कार्य करवाने में समर्थ हैं। इसी उद्देश्य के लिये ही
9. अन्तमहामात्र भी विद्यमान हैं (नियुक्त किए गए हैं)। यही विधि है कि धर्म के अनुसार कार्य करने की आज्ञा देना, धर्म के अनुसार सुख देना और धर्म के अनुसार रक्षा करना। अर्थात् अन्तमहामात्र धर्माधर्म का भलीभांति विचार करके स्वयं भी आचरण करें तथा प्रजा की रक्षा तथा सुख प्रदान करने में लगें। तथा वे वैसा ही आचरण तथा व्यवहार प्रजा से करवावें।

टिप्पणियां—

1. विधि-राजाज्ञा
2. अगाय-उच्चकोटि
3. पलीखाया-परीक्षा
4. पुलिसा-पुरुषा

सभी स्तम्भलेख अशोक ने अपने राज्यारोहण के 26वें वर्ष पश्चात् खुदवाये थे। इससे पहले सभी लेख चट्टानों पर खुदवाये थे-अपने अपने आदेशों तथा संदेशों के महत्त्व तथा उनकी उपयोगिता को देखते हुए अशोक ने यह निश्चय लिया कि जहाँ चट्टानें नहीं हैं वहाँ सन्देश पहुँचाने के लिये संदेशों की आकार आदि के अनुरूप बड़े-2 बालुकामय स्तम्भ पत्थरों जैसे ही सुदृढ़ बनवाये उनकी ऊपरी भाग पर ऐसी पालिश करवायी जिसकी चमक आज 2200 वर्ष बीत जाने पर भी वैसी ही बनी हुई है। इन स्तम्भ लेखों में यह स्पष्ट उल्लेख है कि अशोक ने 'लेख' या अभिलेख लिखवाने का कार्य राज्यारोहण के 12 वर्ष आरम्भ किया था। (देखिये 6ठा स्तम्भ लेख)। पहले, चौथे तथा छठे स्तम्भ लेख में यह स्पष्ट उल्लेख है कि स्तम्भ लेख राज्यारोहण के 26 वर्ष बीत जाने के बाद लिखवाये थे।

दिल्ली टोपरा द्वितीय स्तम्भ अभिलेख

1. देवानंपिये पियदसि लाज
2. हैव आहा धंमे साधू कियं चु धंमे ति अपासिनवे बहुकयानें
3. दया दाने सचे सोचये चखुदाने पि मे बहुविधे दिने दुपद
4. चतुपदेसु पखिवालिचलेसु विविधे मे अनुगहे कटे आपान
5. दाखिनाये अनानि पि च मे बहूनि कयानानि कटानि एताये मे
6. अठाये इयं धंमलिपि लिखापिता हेवं अनुपटिपजंतु चिलं-
7. थितिका च होतू ती ति ये च हव संपटिपजीसति से सुकटं कछती ति

संस्कृत-छाया

1. देवानांप्रियः प्रियदर्शी राजा
2. एवम् आह धर्मः साधुः। कियान् तु धर्मः इति ? अल्पास्नवः बहुकल्याणं
3. दया दानं सत्यं शौचम्। चक्षुर्दानम् अपि मया बहुविधं दत्तम्। द्विपद-
4. चतुष्पदेषु पक्षिवारिचरेषु विविधः मया अनुग्रहः कृतः, आप्राण-
5. दाक्षिण्यात्। अन्यानि अपि च मया बहूनि कल्याणानि कृतानि। एतस्मै मया
6. अर्थाय इयं धर्म लिपिः लेखिता। एवम् अनुप्रतिपद्यन्तां (जनाः) चिर-
7. स्थितिका च भवेतु इति। यः च एवं संप्रतिपत्स्यते, सः सुकृतं करिष्यति इति।

(हिन्दी अनुवाद)

1. देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा ने
2. इस प्रकार कहा है कि धर्म अच्छा है' पर धर्म क्या है! कम पाप करना, बहुत से कल्याणकारी कार्य करना,
3. दया, दान, सत्य और शौच (पवित्रता) यही धर्म है। मैंने अनेक प्रकार से चक्षुओं का दान भी दिया है, मनुष्यों,
4. पशुओं, पक्षिओं तथा जलचरों पर मैंने अनेक प्रकार से कृपा की है, प्राणों तक
5. दान देने का भी। और भी बहुत से कल्याणकारी कार्य मैंने करवाए हैं। इसी

6. प्रयोजन के लिये यह धर्मलिपि लिखवाई है। इसी प्रकार (जैसा मैंने ऊपर कहा है) इस पर लोग आचरण करें तथा यह
7. (धर्मलिपि) चिरस्थायी रहे। और जो इसी प्रकार आचरण करेगा वह पुण्य का कार्य की करेगा।

टिप्पणियां—

1. धंमे—'धम्म' अर्थात् धर्म की परिभाषा जिसका प्रचार अशोक ने अपने लेखों के माध्यम से किया। यह धम्म किसी सम्प्रदाय विशेष का धम्म नहीं हैं अपितु मानव जीवन को सही रूप में जीने का एकमात्र मार्ग है।
2. चक्षुदान—जीवन के उद्देश्य व सार्थकता को जानने की समझ तथा जीवनदान
3. आ पानदाखिनाये—पशुओं, पक्षियों तथा जलचरों को अवध्य घोषित करके।
4. पखि वालिचलेसु-पक्षियों तथा जलचरों को अवध्य घोषित किया गया है। जिसका विशेष विस्तार पाँचवें स्तम्भ लेख में देखें।
5. चिलथितिका—चिर स्थायी रहने वाली अशोक यह कल्पना साक्षात् सिद्ध हुई है क्योंकि आज 2200 वर्ष बीत जाने पर भी अशोक के लेख अधिकतर पठनीय अवस्था में हैं।

दिल्ली टोपरा तृतीय स्तम्भ अभिलेख

1. देवानंपिये पियदसि लाज हेवं अहा कयानंमव देखति इयं मे
2. कयाने कटे ति नो मिन पापं देखति इयं मे पापे कटे ति इति इयं वा आसिनवे
3. नामा ति दुपटिवेखे चु खो एसा हेवं चु खो एस देखिये इमानि
4. आसिनवगामीनि नाम अथ चंडिये निठूलिये कोधे माने इस्या
5. कालनेन व हकं मा पलिभसयिसं एस बाढ देखिए इयं मे हिदतिकाये इयं मन से पालतिकाये

संस्कृत-छाया

1. देवानांप्रियः प्रियदर्शी राजा एवं आह कल्याणगमेव इदं मया
2. कल्याणं कृतम् इति। नो मनाक् पापं पश्यति इदं मया पापं कृतम् अयं वा आस्नवः
3. नाम इति। दुष्प्रतिवीक्ष्यं तु खलु एतत्। एवं तु खलु एतत् पश्येत् इमानि
4. आस्नवगामीनि नाम यथा चाण्ड्यं नैष्ठुर्य क्रोधः मानः ईर्ष्या
5. [एषां] कारणेन एव अहं मा परिभ्रंशयिष्यामि। एतत् बाढं पश्येत् इदं मे ऐहिकाय इदं अन्यत् मे पारत्रिकाय।

(हिन्दी अनुवाद)

1. देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा ने इस प्रकार कहा है कि (मनुष्य) अच्छे कामों को ही देखता और कहता है कि यह मैंने
2. कल्याणकारी कार्य किया है। परन्तु तनिक भी वह अपने पापकर्म को नहीं देखता और न यह विचार भी करता है कि यह पापयुक्त कार्य मुझसे किया गया है अथवा (मुझ में) यह दोष
3. निश्चय ही है। यह सब देखना निश्चय ही बहुत कठिन है अर्थात् अपने दोषों को स्वीकार करना अत्यन्त ही कठिन कार्य है। तथापि मनुष्य को यह देखना चाहिए कि ये सब

4. पाप के कारण हैं जैसे क्रूरता, निष्ठुरता, क्रोध, मान ईर्ष्या
5. (इनके) कारण ही कही मैं कहीं गिर न जाऊँ मार्ग भ्रष्ट न हो जाऊँ। इस बात को विशेष रूप से देखना चाहिए कि अमुक कार्य मुझे इस लोक के लिये (लाभकारी) तथा अमुक कार्य परलोक के लिये (लाभकारी) है।

टिप्पणियां—

1. आस्नव—मानसिक शत्रु जैसे काम क्रोध मोह ईर्ष्या इत्यादि।
2. आसिनवगामीनि—पाप की ओर ले जाने वाले।
3. हिदतिकाये—इस जीवन के लिये।
4. पालतिकाये—परलोक के लिये।
5. हक—मैं
6. एहिकाये—इस जीवन में कल्याण के लिये।
7. पारत्रिकाय—परलोक में कल्याण के लिये।

दिल्ली टोपरा चतुर्थ स्तम्भ अभिलेख

1. देवानंपिये पियदसि लाज हेवं आहा सडुवीसतिवस
2. अभिसितेन मे इयं धंमलिपि लिखापिता लजूका मे
3. बहूसु पानसतसहसेसु जनसि आयता तेसं ये अभिहाले वा
4. दंडे वा अतपतिये मे कटे किंति लजूका अस्वथ अभीता
5. कंमानि पवतयेवू जनस जानपदसा हितसुखं उपदहेवू
6. अनुगहिनेवु चा सुखीयनं दुखीयनं जानिसंति धंमयुतेन च
7. वियोवदिसंति जनं जानपदं किंति हिदतं च पालतं च
8. आलाधयेवू ति लजूका पि लघंति पटिचलितवे मं पुलिसानि पि मे
9. छंदंनानि पटिचलिसंति ते पि च कानि वियोवदिसंति येन मं लजूका
10. चघंति आलाधयितवे अथा हि पजं वियताये धातिये निसिजितु
11. अस्वथे होति वियत धाति चघति मे पजं सुखं पलिहटवे
12. हेवं ममा लजूका कटा जानपदस हितसुखाये येन एते अभीता
13. अस्वथ संतं अविमना कंमानि पवतयेवू ति एतेन मे लजूकानं
14. अभीहाल व दंडे वा अतपतिये कटे इछितविये हि एसा किंति
15. वियोहालसमता च सिय दंडसमता चा अव इते पि च मे आवुति
16. बंधनबधानं मुनिसानं तीलितदंडानं पतवधानं तिंनि दिवसानि मे
17. योते दिने नातिका व कानि निझपयिसंति जीविताये तानं
18. ना संतं वा निझपयिता दानं दाहंति पालतिकं उपवासं व कछंति
19. इछा हि मे हेवं निलुधसि पि कालसि पालतं आलाधयेवू ति जनस च
20. वढति विविधे धंमचलने संयमे दानसविभागे ति

संस्कृत--छाया

1. देवानांप्रियः प्रियदर्शी राजा एवम् आह षड्विंशतिवर्षा-
2. भिषिक्तेन मया इयं धमलिपिः लेखिता। रज्जुकाः मे
3. बहुषु प्राणशतसहस्रेषु जनेषु आयताः। तेषां यः अभिहारः वा,
4. दण्डः वा आत्मपतिकः मया कृतः। किमिति? रज्जुकाः आश्वस्ताः अभीताः
5. कर्माणि प्रवर्तयेयुः, जनस्य जानपदस्य हितसुखम् उपदध्युः,
6. (तान्) अनुगृह्णीयुः च। सुखयनं दुःखयनं ज्ञास्यन्ति, धर्मयुक्तेन च

7. व्यववदिष्यन्ति जनं जानपदं—किमिति ऐहत्रं च पारत्रं च
8. आराधयेयुः इति। रज्जुकाः अपि अर्हन्ति प्रतिचलितु मां, पुरुषान् अपि मे
9. छन्दज्ञान् प्रतिचलिष्यन्ति। ते अपि च केऽपि व्यववदिष्यन्ति येन मां रज्जुकाः
10. शक्ष्यन्ति आराधयितुम्। यथा हि प्रजां विज्ञाताय धात्र्यै निसृज्य
11. आश्वस्तः भवति विज्ञाता धात्री शक्यति मे प्रजां सुखं परिहर्तुम्।
12. एवं मया रज्जुकाः कृताः जानपदस्य हितसुखाय। येन एते अभीताः
13. आश्वस्ताः सन्तः अविमनस्काः कर्माणि प्रवर्तयेयुः इति, एतेन मयां रज्जुकानाम्
14. अभिहारः वा, दण्डः वा आत्मपतिकः कृतः हि एतत् किमिति
15. व्यवहारसमता च स्यात्, दण्ड-समता च। यावत् इदम् अपि च मे आवृतिः
16. बन्धनबद्धेभ्यः मनुष्येभ्यः तीरितदण्डेभ्यः प्राप्तवधेभ्यः त्रयः दिवसाः मया
17. यौतं दत्तम्। ज्ञातिकाः वा केऽपि निध्यापयिष्यन्ति जीविताय तेषां
18. न सति वा निध्यापयितरि, दानं दास्यन्ति पारत्रिकम्, उपवासं वा करिष्यन्ति।
19. इच्छा हि मे एवं निरुद्धे अपि काले पारत्रम् आराधयेयुः इति, जनस्य च
20. वर्धते विविधं धर्म-चरणं संयमः दान-संविभागः इति।

(हिन्दी अनुवाद)

1. देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा ने इस प्रकार कहा है छब्बीस वर्ष
2. मेरे अभिषेक के बाद मैंने यह धर्मलिपि लिखवाई। रज्जूकों को मैंने
3. बहुत से लाखों लोगों के ऊपर नियुक्त किया है। उनको जो अधिकार है अथवा
4. दण्ड देने का अथवा पुरस्कार देने का जो अधिकार मैंने उनको दिया है। वे क्यं क्या हैं रज्जूक लोग आश्वस्त तथा निर्भय होकर
5. कर्त्तव्यों का पालन करें, जनपद में रहने वाले लोगों की भलाई व सुविधाओं का विशेष ध्यान रखें।
6. और दुःखी (जनता) को अनुगृहीत करें (उन पर दया दृष्टि रखें) उन्हें किस प्रकार सुख प्राप्त हो सकता है तथा किस प्रकार उनका दुःख दूर हो सकता है यह सब जानेंगे, तथा धर्मशील
7. (व्यक्तियों) के द्वारा जनपद में रहने वाले लोगों को ऐसा उपदेश दिलवायेंगे जिससे कि वे इस लोक तथा परलोक दोनों स्थानों पर

8. सुखों को प्राप्त कर सकें। रज्जुक भी मुझ तक पहुँचने में (सूचना देने में) अधिकारयुक्त हैं अर्थात् वे अपनी सूचनाऐं मुझ तक प्रत्यक्ष रूप से भेजने में

9. समर्थ हैं। मेरी इच्छाओं को जानने वाले 'पुरुष' अधिकारियों को भी वे (रज्जुक) निर्देश देंगे। और वे (पुरुष अधिकारी) भी कभी-कभी लोगों को इस प्रकार उपदेश देवेंगे कि जिससे 'रज्जुक' भी मुझे

10. प्रसन्न करने में समर्थ हो सकेंगे (मैं तभी रज्जुकों से प्रसन्न होऊँगा जबकि उनके अधीन कार्य करने वाले 'पुरुष' अधिकारियों का धर्मोपदेश देने का कार्य सन्तोषप्रद होगा)। जिस प्रकार सन्तान को योग्य धाय के संरक्षण में रखकर

11. (माता पिता) आश्वस्त हो जाते है कि योग्य धाय हमारे बच्चों की देखभाल व लालन पालन अच्छी प्रकार से करेगी, उसी प्रकार वे रज्जुक भी मेरी प्रजा को सुख पहुँचाने में समर्थ होंगे।

12. यही सोचकर मैंने जनपद के निवासियों के कल्याण व सुख के लिये रज्जुकों की नियुक्तियाँ की है। जिस प्रकार ये निर्भय होकर,

13. तथा आश्वस्त होते हुए शान्त चित्त होकर अपना कार्य सम्पादन करें, इसी कारण से मैंने

14. रज्जुकों को जो अधिकार दिया है दण्ड देने का अथवा क्षमा करने का इसके निर्णय में वे ही समर्थ हैं। ऐसा होना ही अभीष्ट था जिससे कि

15. व्यवहार में समता तथा दण्ड देने में समता हो। इस कारण यह भी मेरा आदेश है कि

16. बंदी बनाए गये मनुष्यों, जिन्हें दण्ड दिया जा चुका है तथा जिनको मृत्युदण्ड घोषित किया जा चुका है उन सबके लिये मैंने तीन दिनों की

17. छूट दी है (दण्ड प्राप्त व्यक्तियों) के कुटुम्बी लोग या उनकी ओर से कोई और उनके जीवनदान के लिये रज्जुकों से पुनर्विचार के लिये प्रार्थना करेंगे।

18. प्रार्थना के पुनर्विचार के लिये स्वीकृत न होने पर वे उनके परलोक की कामना से दानादि करेंगे अथवा व्रत उपवास रखेंगे।

19. क्योंकि यह भी मेरी ही इच्छा है कि बन्धन बद्ध होने पर भी वे अपना परलोक सुधारें। (क्योंकि ऐसा करने से) लोगों

20. में अनेक प्रकार का धर्माचरण, संयम और दान देने की इच्छा बढ़ती है।

टिप्पणियां—

1. 'अभिहाल (अभिहार) मूलार्थ 'हथियार' है जो धारण किया जाया प्रस्तुत प्रसंग में यह शब्द 'अधिकार' के अर्थ में हुआ जिसका प्रयोग 'रज्जुक' अपनी इच्छानुसार परन्तु सोच समझकर करें।
2. अशोक ने प्रशासन को चुस्त व दुरुस्त करने के 'रज्जुक' नाम के अधिकारियों की सारे साम्राजय में नियुक्तियां की थीं। 'रज्जुकों' की तुलना आज के संदर्भ में भारत संघ के राज्यों में राष्ट्रपति के उन प्रतिनिधियों से की जा सकती है जिन्हें राज्यपाल या गवर्नर कहते हैं और वे प्रत्येक राज्य में राष्ट्रपति के प्रतिनिधि के रूप में प्रशासक पर निगाह रखते हैं। प्रशासनतन्त्र के असफल हो जाने की सूचना राष्ट्रपति को देते हैं, आज भी दण्ड पाये व्यक्ति को क्षमा दान करने का अधिकार कुछ मामलों में राज्यपालों को है। इसी प्रकार रज्जुओं को प्रशासनिक तथा दाण्डिक अधिकार प्राप्त थे जो अशोक के अनुसार लाखों व्यक्ति के ऊपर थे तथा युत व आयुत (युक्त या आयुक्त) जिन्हें आज के सन्दर्भ में जिलाधीश व कमिश्नर कहा जाता है— रज्जुकों की नियुक्ति से प्रजा का जो भी कल्याण हुआ उसका ही मूल्यांकन अशोक ने इस अभिलेख में किया है।
3. पुरुषान्— अधिकारी वर्ग (राजपुरुष)
4. धातिये— (धाय)— परिचारिका ''नर्स'' जो प्रसव के समय से ही बच्चे की देखभाल करती है और बदले में उसे वेतन या भृति मिलती है।
5. जनपद— शब्द का प्रयोग 'जिले' के अर्थ में हुआ है। अशोक का राज्य जनपदों में बंटा हुआ था और प्रत्येक जनपद का प्रशासन 'रज्जुक' के नियन्त्रण में रख दिया था।
6. यह लेख भी सिंहासनारोहण के 26 वर्ष बाद लिखवाया गया था।

दिल्ली टोपरा पञ्चम स्तम्भ अभिलेख

देवानंपिये पियदसि लाज हेवं अहा सडुवीसतिवस
1. अभिसितेन मे इमानि जातानि अवधियानि कटानि से यथा
2. सुके सालिका अलुने चकवाके हंसे नंदीमुखे गेलाटे
3. जतूका अंबाकपीलिका दड़ी अनठिकमछे वेदवेयके
4. गंगापुपुटके संकुजमछे कफटसयके पंनससे सिमले
5. संडके ओकपिडे पलसते सेतकपोते गामकपोते
6. सवे चतुपदे ये पटिभोगं नो एति न च खादियती [अजकानानि]
7. एडका चा सूकली चा गभिनी व पायमीना व अवधिय पोतके
8. पि च कानि आसंमासिके वधिकुकुटे नो कटविये तुसे सजीवे
9. नो झापेतविये दावे अनठाये वा विहिसाये वा नो झापेतविये
10. जीवेन जीवे नो पुसितविये तीसु चातुमासीसु तिसायं पुंनमासियं
11. तिंनि दिवसानि चावुदसं पंनडसं पटिपदाये धुवाये चा
12. अनुपोसथं मछे अवधिये नो पि विकेतविये एतानि येवा दिवसानि
13. नागवनसि केवटभोगसि यानि अंनानि पि जीवनिकायानि
14. नो हंतवियानि अठमीपखाये चावुदसाये पंनडसाये तिसाये
15. पुनावसुने तीसु चातुंमासीसु सुदिवसाये गोने नो नीलखितविये
16. अजके एडके सूकले ए वा पि अंने नीलखियति नो नीलखितविये
17. तिसाये पुनावसुने चातुंमासिये चातुंमासिपखाये अस्वसा गोनसा
18. लखने नो कटविये याव सडुवीसतिवस अभिसितेन मे एताये
19. अंतलिकाये पंनवीसति बंधनमोखानि कटानि

संस्कृत-छाया

1. देवानांप्रियः प्रियदर्शी राजा एवम् आह षड्विंशति वर्षा-
2. भिषिक्तेन मया इमानि जातानि अवध्यानि कृतानि, तत् यथा
3. शुकः सारिका अरुणः चक्रवाकः हंसः नन्दीमुखः गेलाटः
4. जतूकः आम्रपिपीलिका दुडिः अनस्थिक मत्स्यः वेदवेयकः
5. गंगा पुपुटकः संकुज मत्स्यः कमठ शर्यकः पर्ण शशः सृमरः

6. षण्ढकः ओकपिण्डः पल्थशतः श्वेत कपोतः ग्राम कपोतः,
7. सर्वे चतुष्पादाः यत् [यत्] प्रतिभोगं न एति, न च खाद्यते। अजकाद्याः,
8. एडकाः च, शूकर्यः च गर्भिण्यः वा पाययमानाः वा— अवध्याः, पोतकाः
9. अपि च ये आषाण्मासिकाः। वध्रि कुक्कुट नो कर्त्तव्यः। तुषः सजीवः
10. नो दाहयितव्यः। दावः अनर्थाय वा विहिसायै वा नो दाहयितव्यः।
11. जीवेन जीवः नो पोषयितिव्यः। तिसृषु चातुर्मासीषु, तिष्यपौर्णमास्यां
12. त्रिषु दिवसेषु चतुर्दशे पञ्चदशे प्रतिपदि ध्रुवे च
13. अनूपवसथं मत्स्यः अवध्यः, नोऽपि विक्रेतव्यः। एतान् एव दिवसान्
14. नागवने कैवतभोगे, ये अन्ये अपि जीवनिकायाः,
15. नो हन्तव्याः। अष्टमपक्षे चतुर्दश्यां पञ्चदश्यां तिष्ये
16. पुनर्वसौ, तिसृषु चातुर्मासीषु, सुदिवसे गौः नो निलिखितव्यः,
17. अजकः एडकः शूकरः, यः वा अपि अन्यः निर्लिख्यते, नो निर्लिक्षयितव्यः।
18. तिष्ये पुनर्वसो चातुर्मास्यां चातुर्मासीपक्षे अश्वस्य गोः
19. लेखनं नो कर्तव्यम्। यावत् षड्विंशति वर्षाभिषिक्तेन मया एतस्मिन्
20. अन्तरे पञ्चविशतिः बन्धनमोक्षाः कृताः।

(हिन्दी अनुवाद)

1. देवानांप्रिय प्रियदर्शी ने इस प्रकार कहा है— छब्बीस वर्ष
2. अभिषेक होने के बाद मैंने इन-इन प्राणियों को अवध्य घोषित किया है जो इस प्रकार हैं—
3. तोता, मैना, अरुण, चक्रवाक, हंस, नन्दीमुख, गेलाट,
4. चमगादड़, दीमक, कछुवी, बिना हड्डी की मछली, वेदवेयक
5. गंगापुपुटक, संकुजमत्स्य, कछुआ, साही, गिलहरी, बारहासिंगा,
6. सांड, ओकपिण्ड, गेंडा, सफेद कबूतर, गांव के कबूतर,
7. सभी प्रकार चौपाये (जानवर) जिनका कोई उपयोग नहीं है और न खाए ही जाते हैं, बकरी,
8. भेड़ व सूरी इत्यादि जो गर्भिणी हैं अथवा अपने बच्चों को दूध पिलाती हों— नहीं मारी जांयगी, इनके बच्चे
9. भी जो अभी 6 मास से कम आयु के है (नहीं मारे जाएंगे) मुर्गे को बधिया नहीं करना चाहिए। जिस भूसे में प्राणी हो,

10. नहीं जलाना चाहिए। बिना किसी प्रयोजन अथवा केवल (वन्य प्राणियों की) हिंसा के लिये आग नहीं लगानी चाहिए।
11. एक जीव से दूसरे जीव का पोषण नहीं करना चाहिए। प्रति चार महीने की तीन पूर्णमासियों को तिष्य नक्षत्र युक्त पूर्णमासी को
12. चतुदर्शी, अमावस्या तथा प्रतिपदा को, तीन दिवसों में निश्चित रूप से
13. उपवास के पश्चात् न तो मछली मारी जाय और न ही बेची जाय।
14. इन्हीं सब दिनों 14 में हाथियों के जंगलों में तथा तालाबों में जो भी अन्य प्राणि समूह (थलचर या जलचर) हैं
15. नहीं मारे जाय। प्रत्येक पक्ष की अष्टमी, चतुदर्शी अमावस्या व पूर्णिमा, तथा तिष्य
16. पुनर्वसु के दिन, तीनां चातुर्मासियों के दिन तथा त्यौहारों के दिन गो (वृषभ) को बधिया नहीं दागना चाहिये।
17. बकरा, भेड़, सूअर या जो भी अन्य पशु दागे जाते हैं—नहीं दागे जाने चाहिऐं।
8. तिष्य व पुनर्वसु नक्षत्रों के दिन, प्रत्येक चातुर्मास्य की पूर्णिमा के दिन तथा प्रत्येक चातुर्मासी के शुक्ल पक्ष में घोड़े और वृषभों (बैल)
19. को नहीं दागना चाहिए। अभिषेक के पश्चात् छब्बीस वर्षों की इस अवधि में मैंने
20. में पच्चीस बार (बन्दियों को) कारागार से मुक्त किया है।

टिप्पणियां—

1. प्रस्तुत अभिलेख सम्राट् अशोक ने अपने राज्यारोहण के छब्बीसवें वर्ष पूरे होने पर उत्कीर्ण करवाया था। उपरोक्त अभिलेख एक 'राजाज्ञा' के रूप में है। विभिन्न प्रकार के पशु-पक्षियों तथा जलचरों की निरीह हत्या रोककर तथा भोजनादि अथवा स्वाद के निमित्त मारे जाने वाले जीवों को संरक्षण प्रदान करके, प्रकृति में सन्तुलन स्थापित करना था। यही विषय आज के सन्दर्भ 'सिंह' को राष्ट्रीय पशु, मोर को राष्ट्रीय पक्षी घोषित करके उनके वंश को नष्ट होने से बचाना है। यह तो सुविदित ही है कि आज भी चोरी छिपे हजारों पशुओं का वध केवल उनकी खाल निर्यात करने के उद्देश्य से किया जाता है। तमिलनाडु में घाड़ियालों के नष्ट होने से बचाने के लिए एक विशेष अभियान, वहा की सरकार ने चलाया है। सारे भारत में 'अभयारण्यों' की परियोजना की परिकल्पना भी वन्य पशु

एवं पक्षियों के संरक्षण के उद्देश्य से की गई है जिसका मूल प्रेरणा स्रोत संभवत यही अशोक का पंचम स्तम्भ अभिलेख है जो सारे भारत में अशोक ने इसी भावना से उत्कीर्ण करवाया था कि राज्य के साथ साथ प्रजा भी उपरोक्त जीवों के संरक्षण में सक्रिय सहयोग प्रदान करे। राजस्थान में चीतल व सांभर को रक्षित व अवध्य घोषित किया है, यह आदेश तभी लागू हो सकता है जबकि वहां के निवासी भी प्रशासन का सहयोग करे। निकटभूत काल में घटी घटना जिसमें कुछ सिने कलाकारों ने राजस्थान में काले हरिणों को मारा था और रिसमें प्रजा ने जो प्रशासन का सहयोग दिया वह प्रशंसनीय है। सिने कलाकारों पर प्रशासन ने न्यायालय में पशुवध का दोषी मानते हुए अभियोग चलाया है। निर्णय क्या होता है—यह समय ही बतायेगा। परन्तु इस घटना से सभी ने सीख ली है कि सभी प्रकार के पशु सिवाय भेड़ों व बकरों तथा सूअरों के—अवध्य हैं।

2. लेख के अनुसार लेख लिखे जाने तक अशोक ने 25 बार बन्दियों को कारागार से मुक्त किया था। इसका तात्पर्य यह है कि अपने राज्यारोहण की प्रत्येक वर्षगांठ पर बन्दी मुक्त किये जाते थे। सामान्यतः जिन बन्दियों का व्यवहार संतोषजनक पाया जाता होगा तथा जिन्होंने अपने दुष्कृत्य के प्रति पश्चाताप किया होगा उन्हें ही अशोक राज्यारोहण की वर्षगांठ की खुशी में बन्धन मुक्त करता था। जैसी कुछ आज भी यह परम्परा आजादी की पचासवीं वर्षगांठ पर मनायी गयी, कुछ बन्दियों की बची हुई सजा माफ कर दी गई ।

दिल्ली टोपरा षष्ठ स्तम्भ अभिलेख

1. देवानंपिये पियदसि लाज हेवं अहा दुवाडस
2. वस अभिसितेन मे धंमलिपि लिखापिता लोकसा
3. हितसुखाये से तं अपहटा तं तं धंमवढि पापोवा
4. हेवं लोकसा हितसुखे ति पटिवेखामि अथ इयं
5. नातिसु हेवं पतियासंनेसु हेवं अपकठेंसु
6. किमं कानि सुखं अवहामी ति तथ च विदहामि हे मे वा
7. सवनिकायेसु पटिवेखामि सवपासंडा पि मे पूजिता
8. विविधया पूजया ए च इयं अतना पचूपगमने
9. से मे मोख्यमते सडुवीसतिवस अभिसितेन मे
10. इयं धंमलिपि लिखापिता

संस्कृत–छाया

1. देवानांप्रियः प्रियदर्शी राजा एवम् आह— द्वादश-
2. वर्षाभिषिक्तेन मया धर्मलिपि लेखिता लोकस्य
3. हितसुखाये येन तत् अप्रहर्ता तां तां धर्मवृद्धि प्राप्नुयात्
4. एवं लोकस्य हितसुखम् इति प्रतिवीक्षे। यथा इदं
5. ज्ञातिषु एवं प्रत्यासन्नेषु एवं अपकृष्टेषु
6. किं कान् सुखम् आवहामि इति तथा च विदधामि। एवमेव
7. सर्वनिकायेषु प्रतिवीक्षे। सर्वपाषण्डाः अपि मया पूजिताः
8. विविधया पूंजया। यत् तु इदम् आत्मना प्रत्युपगमनं
9. तत् मे मुख्यमतम्। षड्विंशतिवर्षाभिषिक्तेन मया
10. इयं धर्मलिपिः लेखिता।

(हिन्दी अनुवाद)

1. देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा ने इस प्रकार कहा है। बारह
2. वर्ष (मेरे) राज्यभिषेक के बाद मैंने धर्म लिपि (धर्म लेख) लिखवाये थे लोगों के
3. कल्याण ओर सुख के लिये जिससे कि उन लेखों का उल्लंघन न करने

वाला तत् तत् (भिन्न-भिन्न प्रकार की) धर्म की वृद्धि को प्राप्त करें।

4. मैं इसी उपाय से मैं लोगों के कल्याण व सुख को देखता हूँ। जैसे कि यह
5. मेरे कुटुम्बीजनों में है उसी प्रकार (मेरे) आसपास के तथा दूर निवास करने वाला भी (अपना कल्याण साध सकते हैं तथा सुखी हो सकते हैं)।
6. मैं उसी प्रकार प्रयत्न करता हूँ कि जिस प्रकार मैं अधिक से अधिक लोगों को सुख पहुँचा सकूँ। इसी प्रकार
7. सब समाजों में (हित व सुख को) ध्यान में रखता हूँ। सभी सम्प्रदायों की भी पूजा मैंने
8. नाना प्रकार की पूजा विधियों से की है। यह जो मेरा सब लोगों तक पहुँचाना है (मैं अपना संदेश उन तक पहुँचाऊँ)।
9. यही मेरा मुख्य उद्देश्य है। छब्बीस वर्ष अभिषेक के बाद मैंने यह धर्मलिपि लिखवाई है।

टिप्पणियां—

1. प्रकृत लेख में दी गई दो विभिन्न तिथियों के अनुसार अशोक ने राज्याभिषेक के बारह वर्षों पश्चात् धर्मलेख लिखवाये थे। चौदह वर्ष पश्चात् जबकि उसके अभिषेक को हुए छब्बीस वर्ष बीत चुके हैं, अपने धर्मलेखों के प्रभाव से हुए प्रजा के कल्याण के विषय में मूल्यांकन करते हुए अशोक सभी धर्म के मानने वालों को आश्वासन देता है कि वह सभी धर्मो का समान रूप से आदर करता है। सब धर्मों में सामञ्जस्य ही उसके जीवन का मुख्य उद्देश्य है।

   आज के सन्दर्भ में अशोक की यह शिक्षा या आदेश बहुत महत्त्वपूर्ण है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले 1942 में कलकत्ते का बलवा, जिसमें अगणित विभिन्न सम्प्रदायों के लोग मारे गये थे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् 1984 के दंगों, तथा 1992 के अयोध्या विवाद के कारण उत्पन्न कटुता से सैकड़ों निर्दोष लोगों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा। ये सब जघन्य हत्यायें मानवता के नाम पर कलंक हैं। यदि हमने अशोक की शिक्षाओं पर आचरण करके दूसरे के धर्म का सम्मान करना सीखा होता तो यह सब स्थिति उत्पन्न नहीं होती। 'सवे पाषण्डा वसेयुः' का तात्पर्य यही है—"मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर करना"—अशोक के समय में भी इसी प्रकार

के धार्मिक झगड़े होते होंगे, तभी उसने अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य सब सम्प्रदाय के लोगों में सामञ्जस्य व प्रेम की भावना को स्थापित करना बना लिया था। और वह इसमें पूरी तरह सफल हुआ जिसका प्रमाण यही छठा स्तम्भ अभिलेख है। यह सामञ्जस्य ही है जिसने अशोक की राजाज्ञाओं को धर्म लेख अथवा धर्मलिपि की संज्ञा दी।

दिल्ली टोपरा सप्तम स्तम्भ अभिलेख

1. देवानंपिये पियदसि लाजा हेवं आहा ये अतिकंतं
2. अंतलं लाजाने हुसु हेवं इछिसु कथं जने
3. धंमवढिया वढेया नो चु जने अनुलुपाया धंमवढिया
4. वढिथा एतं देवानंपिये पियदसि लाजा हेवं आहा एस मे
5. हुथा अतिकतं च अंतंलं हेवं इछिसु लाजाने कथं जने
6. अनुलुपाया धंमवढिया वढेया ति नो च जने अनुलुपाया
7. धंमवढिया वढिथा से किनसु जने अनु पटिपजेया
8. किनसु जने अनुलुपाया धंमवढिया वढेया ति किनसु कानि्
9. अभ्युनामयेहं धंमवढिया ति एतं देवानंपिये पियदसि लाजा हेवं
10. आंहा एसव मे हुथा धंमसावनानि सावापयामि धंमानुसथिनि
11. अनुसासामि एतं जने सुतु अनुपटीपजीसति अभ्युंनमिसति
12. धंमवढिया च बसढं वढिसति एताये मे अठाये घमसाननानि सावापितानि धंमानुसथिनि विविधानि आनपितानि [यथा पुलि] सापि बहुने जनसि आयता ए ते पलियोवदिसंति पि पविथलिसंति पि लजूका पि बहुकेसु पानसतसहसेसु आयता ते पि मे आनपिता हेवं व हेवं च पलियोवदाय
13. जनं धंमयु[तं] देवानंपिये पियदसि हेवं आहजा एतमेव मे अनुवेखमाने धंमथभानी कटानि धंममहामाता कटा धंम-[सावने] कटे देवानंपिये पियदसि लाजा हेवं आहा मगेसु पि मे नगोहानि लोपापितानि छायोपगानि होसंति पसुमुनिसानं अंबावडिक्या लोपापिता अढकोसिक्यानि पि मे उदपानानि
14. खानापापितानि निंसि[ढ] या च कालापिता आपानानि मे बहुकानि तत तत कालापितानि पटीभोगाये पसुमुनिसानं [ल हुके चु] एस पटीभोगे नाम विविधाया हि सुखायनाया पुलिमेहि पि लाजीहि ममया च सुखयिते लोके इमं चु धंमानुपटीपती अनुपटीपजंतु ति एतदथा मे
15. एस कटे देवानंपिये पियदसि हेवं आहा धंममहामाता पि मे ते बहुविधेसु

अठेसु आनुगहिकेसु वियापटा से पवजीतानं चेव गिहिथानं च सव[पासं]डेसु पि च वियापटा से संघठसि पि मे कटे इमे वियापटा होहंति हेमेव बाभनेस आजीविकेसु पि मे कटे

16. इमे वियापटा होहंति ति निगंठेसु पि मे कटे इमे वियापटा होहंति नानापासंडेसु पि मे कटे इमे वियापटा होहंति ति पटिविसिठं पटीविसिठं तेसु तेसु ते ते महामाता धंममहामाता चु मे एतेसु चेव वियापटा सवेसु च अनेसु पासंडेसु देवानंपिये पियदसि लाजा हेवं आहा

17. एते च अना च बहुका मुखा दानविसगसि वियापटा से मम चेव देविनं च सवसि च मे ओलोधनसि ते बहुविधेन आ [का] लेन तानि-तानि तुठायतनानि पटी [वेदयंति] हिद चेव दिसासु च दालकानं पि च मे कटे अंनानं च देविकुमालानं इमे दानविसगेसु वियापटा होहंति ति

18. धंमापदानठाये धंमानुपटिपतिये एस हि धंमापदाने धंमपटीपति च या इयं दया दाने सचे सोचवे मदवे साध [वे] च लोकस हेवं वढिसति ति देवानंपिये [पियदसि] लाजा हेवं आहा यानि हि कानिचि ममिया साधवानि कटानि तं लोके अनुपटीपंनं तं च अनुविधियंति तेन वढिता च

19. वढिसंति च मातापितिसु सुसुसाया गुलुसु सुसुसाया वयो महालकानं अनुपटीपतिया बाभनसमनेसु कपनवलाकेसु आव दासभटकेसु संपटीपतिया देवानंपि [ये पि]यदपि लाजा हेवं आहा मुनिसानं चु या इयं धंमवढि वढिता दुवेहि येव आकालेहि धंमनियमेन च निझतिया च

20. तत् चु लहु से धंमनियमे निझतिया व भुये धंमनियमे चु खो एस ये मे इयं कटे इमानि च इमानि जातानि अवधियानि अंनानि पि चु बहु[कानि] धंमनियमानि यानि मे कटानि निझतिया व चु भुये मुनिसानं धंमवढि वढिता अविहिंसाये भूतानं

21. अनालंभाये पानानं से एताये अथाये इयं कटे पुतापपोतिके चंदमसुलियिके होतु ति तथा च अनुपटीपजंतु ति हेवं हि अनुपटीपजंतं हिदत [पाल] ते आलधे होति सतविसतिवसाभिसितेन मे इयं धंमलिबि लिखापापिता ति एतं देवानंपिय आह इयं

22. धंमलिबि अत अथि सिलाथंभानि वा सिलाफलकानि वा तत कटविया एन एस चिलठितिके सिया

संस्कृत-छाया

1. देवानांप्रियः प्रियदर्शी राजा एवम् आह ये अतिक्रान्ते
2. अन्तरे राजानः अभूवन् एवम् ऐषिषुः कथं जनः
3. धर्मवृद्ध्या वर्धेत। न तु जनः अनुरूपया धर्मवृद्ध्या
4. अवर्द्धिष्ट। अत्र देवानांप्रियः प्रियदर्शी राजा एवम् आह एतत् मे
5. अभूत् अतिक्रान्ते च अन्तरे एवम् एषिषुः राजानः कथं जनः
6. अनुरूपया धर्मवृद्ध्या वर्धेत इति। नो च जनः अनुरूपया
7. धर्मवृद्ध्या अवर्द्धिष्ट। तत् कथंस्वित् जनः (धर्मम्) अनु प्रतिपद्येत,
8. कथं स्वित् जनः अनुरूपया धर्म वृद्ध्या वर्धेत इति, कथंस्वित् कांश्चित
9. अभ्युन्नामयेयं धर्मवृद्ध्या इति। अत्र देवानांप्रियः प्रियदर्शी राजा एवम्
10. आह—एतत् मे अभूत् धर्मश्रावणानि श्रावयामि, धर्मानुशस्तीः (च)
11. अनुशास्मि। एताः जनः श्रुत्वा अनुप्रतिपत्स्यते, अभ्युन्नंस्यति,
12. धर्म वृद्धया च बाढं वर्द्धिष्यते। एतस्मै मया अर्थाय धर्म श्रावणानि श्रावितानि, धर्मानुशस्तयः विविधाः आज्ञप्ताः, यथा पुरुषाः अपि बहुषु जनेषु आयताः ये ते पर्यववदिष्यन्ति अपि, प्रविस्तारयिष्यन्ति अपि, रज्जुकाः अपि बहुकेषु प्राणशतसहस्त्रेषु आयताः। तेऽपि मया आज्ञप्ताः एवं च एवं च पर्यवदत
13. जनं धर्म-युक्तम्। देवानांप्रियः प्रियदर्शी एवम् आह—एतदेव मया अनुवीक्षमाणेन धर्मस्तम्भाः कृताः, धर्ममहामात्राः कृताः, धर्म श्रावणं कृतम्। देवानांप्रियः प्रियदर्शी राजा एवम् आह—मार्गेषु अपि मया न्यग्रोधाः रोपिताः छायोपगाः भविष्यन्ति पशुमनुष्याणाम्, आम्रवाटिकाः रोपिताः। आष्ट क्रोशिकानि अपि मया उदपानानि
14. खानितानि, निषद्याः च कारिताः, आपानानि मया बहुकानि तत्र-तत्र कारितानि प्रतिभोगाय पशुमनुष्याणां लघुकाः तु एते प्रतिभोगाः नाम। विविधैः हि सुखयनैः पूर्वैः अपि राजभिः, मया च सुखयितः लोकः। इमां तु धर्मानुप्रतिपत्तिम् अनुप्रतिपद्यन्तां(जनाः) इति, एतदर्थाय मया
15. एतत् कृतम्। देवानांप्रियः प्रियदर्शी एवम् आह धर्ममहामात्राः अपि मे ते बहुविधेसु अर्थेषु आनुग्रहिकेषु व्यापृताः, तत् प्रव्रजितानां चैव गृहस्थानां च सर्वपाषण्डेषु अपि च व्यापृताः। तत् संघार्थे अपि मया कृतम् इमे व्यापृताः भविष्यन्ति इति। एवमेव ब्राह्मणेषु आजीविकेषु अपि मया कृतम्—

इमे व्यापृताः भविष्यन्ति इति। निर्ग्रन्थेषु अपि मया कृतम् इमे व्यापृताः

16. इमे व्यापृताः भविष्यन्ति इति। निर्ग्रन्थेषु अपि मया कृतम्—इमे व्यापृताः भविष्यन्ति भविष्यन्ति। नानापाषण्डेषु अपि मया कृतम्—इमे व्यापृताः भविष्यन्ति इति। प्रतिविशिष्टंप्रतिविशिष्टं तेषु तेषु ते ते महामात्राः धर्म महामात्राः तु मे एतेषू चेव व्यापृताः, सर्वेषु च अन्येषु पाषण्डेषु। देवानांप्रियः प्रियदर्शी राजा एवम् आह

17. एते च अन्य च बहुकाः मुख्याः दानविसर्गे व्यापृताः। तत् मम चैव देवीनां च। सर्वेषु च मे अवरोधनेषु ते बहु-विधेन आकारेण तानि तानि तुष्ट्यायतनानि प्रतिवेदयन्ति, इद चैव दिशासु च दारकाण।म् अपि च मया कृतम्, अन्येषां च देवीकुमाराणाम्—इमे दानविसर्गेषु व्यापृताः भविष्यन्ति इति

18. धपर्मावदानार्थाय धर्मानुप्रतिपत्तये। एतत् हि धर्मावदानं धर्मप्रतिपत्तिः च, यानि इमानि दया, दानं, सत्यं, शौचं, मार्दवं, साधवं च लोकस्य एवं वर्धिष्यन्ते इति। देवानांप्रियः प्रियदर्शी राजा एवम् आह यानि हि कानिचित् मया साधवानि कृतानि, तानि लोकः अनुप्रतिपन्नः, तानि च अनुविदधति तेन वधि िता च

19. वर्धिष्यन्ते च माता-पितृषु शुश्रूषया गुरुषु शुश्रुषया वयोमहल्लकानाम् अनुप्रतिपत्त्या, ब्राह्मणश्रमणेषु कृपणवराकेषु यावत् दास-भृतकेषु संप्रतिपत्त्या। देवानांप्रियः प्रियदर्शी राजा एवम् आह मनुष्याणां तु या इयं धर्मवृद्धिः वर्धिता द्वाम्याम् एव आकाराभ्यां धर्मनियमेन च निध्यात्या च।

20. तत्र तु लघुः सः धर्मनियमः, निध्यात्या एव भूयः। धर्मनियमः तु खलु एषः यत् मया इदं कृतम् इमानि च इमानि जातानि अवध्यानि। अन्ये अपि तु बहुकाः धर्मनियमाः ये मया कृताः। निध्यात्या एव तु भूयः मनुष्याणां धर्मवृद्धिः वर्धिता अविहिंसायै भूतानाम्,

21. अनालम्भाय प्राणानाम् तत् एतस्मै अर्थाय इयं [धर्मलिंपिः] कृता पुत्रप्रपौत्रिकी चान्द्रसौर्यिकी भवतु इति, तथा च [इमां धर्मलिपिं जनाः] अनुप्रतिपद्यन्ताम् इति। एवं हि अनुप्रतिपद्यमाने [धर्मे] ऐहत्र-पारत्रम् आराद्धं भवति। सप्तविंशति वर्षाभिषिक्तेन मया इयं धर्मलिपिः लेखिता इति एतत् देवानांप्रियः आह इयं

22. धर्म-लिपिः यत्र सन्ति शिलास्तम्भाः वा, शिलाफलकानि वा तत्र कर्तव्या, येन एषा चिर-स्थितिका स्यात्।

(हिन्दी अनुवाद)

1. देवानांप्रिय प्रियदर्शी ने इस प्रकार कहा है जो बीते हुए
2. समय में राजा हुए उन्होंने इस प्रकार चाहा था कि किसी विधि से जनसामान्य
3. धर्म की वृद्धि से उन्नत हो। परन्तु वह प्रजावर्ग आशा के अनुरूप धार्मिक वृद्धि से
4. उन्नत नहीं हुआ। इस विषय में देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा ने इस प्रकार कहा है—यह विचार मेरे मन में भी
5. उत्पन्न हुआ कि पूर्व समय में राजाओं ने ऐसी इच्छा की थी कि किस प्रकार प्रजावर्ग
6. उचित रूप से धर्म में वृद्धि होने से उन्नत हो परन्तु आशा के अनुरूप प्रजावर्ग धर्म की वृद्धि से
7. नहीं बढ़ा अर्थात् उनमें धार्मिक दृष्टि से उन्नति नहीं हुई वो अब प्रजावर्ग किस प्रकार धर्म का पालन करें।
8. और किस प्रकार प्रजावर्ग धर्म में वृद्धि होने से उन्नत हो तथा किस प्रकार किन किन लोगों को
9. मैं धर्म की वृद्धि होने से उन्नत कर सकूँ। इस उपरोक्त विषय में देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा ने
10. कहा यह विचार मेरे मन में उत्पन्न हुआ कि में धर्मश्रावण कराऊँ और उन्हें धार्मिक शिक्षा
11. देने का प्रबन्ध करूँ। इन धर्मश्रावणों तथा धार्मिक शिक्षाओं को सुनकर वे लोग उसी प्रकार आचरण करेंगे (और) उन्नति करेंगे।
12. और धर्म में वृद्धि होने से वे अच्छी प्रकार से उन्नत होंगे इसी प्रयोजन से मैंने धर्म श्रावणों (धार्मिक प्रवचनों) का
13. प्रबन्ध किया, नाना प्रकार की धार्मिक शिक्षाऐं देने की आज्ञायें दीं जैसे कि 'पुरुष' (राजपुरुषकर्मचारी) जो कि बहुत से लोगों ऊपर नियुक्त हैं वे मेरे उन उपदेशों का प्रचार भी करेंगे और विस्तार भी करेंगे, 'रज्जुकों को भी, जो लाखों लोगों के ऊपर नियुक्त हैं, मैंने यह आज्ञा दी है कि वे भी इसी प्रकार, जैसा मैंने कहा है, धर्मोपदेश देंगे।

13. (सभी) धर्म प्रेमी लोगों को देवानांप्रिय प्रियदर्शी ने इस प्रकार कहा है यही मैंने अच्छी प्रकार सोच समझकर धर्मस्तम्भ स्थापित करवाये धर्म महामात्यों की नियुक्तियाँ की, धार्मिक प्रवचन करवाएँ। देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा ने इस प्रकार कहा है कि मार्गों में भी मैंने न्यग्रोध (बरगद) लगवाये कि वे पशुओं और मनुष्यों को छाया प्रदान करेंगे, आम्रवाटिकाएं लगवाई है, आठ आठ कोस की दूरी पर कुऐं खुदवायें हैं

14. पीने के पानी का प्रबन्ध किया है), तथा सराऐं बनवाई हैं। मैंने अनेक विश्रामस्थल भी जहां तहां पशुओं और मनुष्यों के प्रयोग (सुख) के लिये बनवाए हैं। परन्तु ये उपकारी कार्य मेरी दृष्टि में अत्यल्प ही हैं। मुझसे पहले हुए राजाओं ने तथा मैंने भी विविध प्रकार के सुख देने वाले कार्यों से प्रजावर्ग को सुखी बनाया है। इस धर्म शिक्षा (धर्माचरण) का (लोग) पालन करें, इसी प्रयोजन से मैंने

15. ऐसी व्यवस्था की है। देवानांप्रिय प्रियदर्शी ऐसा कहते हैं कि वे मेरे धर्ममहामात्र भी उपकार के कार्यों में लगे हुए हैं, वे सभी सन्यासियों गृहस्थों तथा विभिन्न सम्प्रदायों के मानने वाले लोगों में (उनका उपकार करने के लिये) लगे हुए हैं, संघ (बौद्ध धर्म संघ) के लिये भी मैंने ऐसा ही किया है वे वहां भी उपस्थित रहेंगे। इसी प्रकार ब्राह्मणों तथा आजीविकों के विषय में भी मैंने ऐसी व्यवस्था की है कि वे (धर्ममहामात्र) उनमें भी रहकर कार्य करेंगे। निर्ग्रन्थों के सम्बन्ध में भी मैंने यही व्यवस्था की है कि वे (धर्ममहामात्र) वहां भी रहेंगे (नाना सम्प्रदायों के विषय में मैंने यह व्यवस्था की है कि वे (धर्ममहामात्र) वहां भी विद्यमान रहेंगे। इस प्रकार भिन्न-भिन्न महामात्र अपने-अपने कार्यों में लगे हुए हैं किन्तु धर्मामहामात्र अपने अपने कार्यों के अतिरिक्त सब सम्प्रदायों का निरीक्षण भी करते है। देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा ने इस प्रकार कहा है–

17. और ये अन्य बहुत से (धर्ममहामात्र) तथा अन्य प्रधान कर्मचारी दान देने के कार्य में लगे हुए हैं, जो दानकार्य मेरा तथा मेरी रानियों का है। वे मेरे सब अन्तपुरों में भिन्न-भिन्न प्रकार से यह बतलाते हैं कि कौन-कौन से लोग कितने-कितने दान के पात्र है। यहां (पाटलिपुत्र में) तथा अन्य सभी दिशाओं में (प्रान्तों में) राजकुमारों के दानादि के विषय में भी मैंने ऐसी

व्यवस्था की है, इसके अतिरिक्त अन्य देवी कुमारों के दान देने के कार्यों में भी (धर्ममहामात्र) लगे रहेंगे तथा

18. धर्म की उन्नति के लिये और धर्माचरण के लिए (लोगों का मार्ग दर्शन करेंगे)। धर्म की उन्नति तथा धर्माचरण यही सब कुछ जैसे दया, दान, सत्य, पवित्रता, व्यवहार में कोमलता, प्रजावर्ग में सज्जनता बढते ही रहेंगे। देवानां प्रिय (प्रियदर्शी) राजा ने इस प्रकार कहा है कि जो कुछ लोकोपकारी कार्य मुझसे किये गये हैं, उन सबको प्रजावर्ग ने स्वीकार किया है, तदनुसार लोग आचरण करते हैं और ऐसा करने से वे उन्नत हुए हैं।

19. तथा माता पिता की सेवा, गुरुजनों की सेवा, वयोवृद्धों का सम्मान करने से तथा ब्राह्मणों, श्रमणों, दीन दुःखियों, दासव सेवकों का यथोचित सम्मान करने से वे लोग (प्रजावर्ग) और उन्नति करेंगे। देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा ने इस प्रकार कहा है कि मनुष्यों में जो धर्म की वृद्धि हुई है वह दो ही प्रकार से हुई है--एक धर्म के नियम (नियमों का पालन करने) से तथा दूसरे मिलकर चर्चा करने से

20. इन दोनों में से धर्म का नियम अपेक्षाकृत कम महत्त्वपूर्ण है, मिलकर चर्चा करना ही अधिक प्रभावी है। धर्मनियम तो निश्चय से यह (है) जो मैंने इस प्रकार (घोषित) करवाया कि अमुक अमुक प्राणी अवध्य हैं अर्थात् न मारे जायँ। और भी बहुत से ऐसे जो धर्मनियम मैंने (घोषित) किए। मिलकर आपस में चर्चा करने से मनुष्यों के धर्म की वृद्धि हुई है जिससे प्राणियों की हिंसा नहीं हुई,

21. (तथा) प्राणहरण के लिये पशुओं का वध नहीं किया जाता है। इसलिये इसी प्रयोजन के लिए यह (धर्मलिपि) लिखवाई है कि यह लिपि मेरे पुत्रों और प्रपोत्रों द्वारा आदृत हो तथा जब तक चन्द्रमा व सूर्य की स्थिति रहे तब तक मानी जाती रहे तथा (वे सब इसके अनुसार आचरण करें। इस प्रकार धर्मपूर्वक) आचरण करने से इस लोक व परलोक की सिद्धि होती है। मेरे राज्याभिषेक के सत्ताईस वर्ष पश्चात् मैंने यह धर्मलिपि लिखवाई है। देवानांप्रिय ने यह कहा है कि

22. जहां जहां शिला स्तम्भ हैं अथवा शिला फलक है वहाँ यह धर्मलिपि लिखी जाय जिसमे यह चिरस्थायी होवे।

टिप्पणियां—

1. स्तम्भ लेखों में इस सातवें अभिलेख की विषयवस्तु अत्यन्त ही विस्तृत है। यह अभिलेख केवल दिल्ली टोपरा स्तम्भ पर ही उत्कीर्ण है तथा अन्यत्र कही और उपलब्ध नहीं हुआ है। पहले छः स्तम्भलेख अशोक ने अपने राज्याभिषेक के छब्बीस वर्ष पश्चात् खुदवाये थे जिनमें उन सभी कार्यों का विस्तृत विवेचन है जिनकी चर्चा अशोक ने अपने शिलालेखों में की है तथा जो राज्यारोहण के बारहवें वर्ष से लेकर छब्बीसवें वर्ष तक चौदह वर्षों की अवधि में अपने सम्पूर्ण साम्राज्य के मुख्य स्थानों तथा सीमावर्ती प्रदेशों में शिलाखण्डों पर खुदवाये थे। अभिलेखों में वर्णित धर्म-शिक्षा व धर्माचार की महत्त्व के प्रभाव को देखकर कृत्रिम स्तम्भ बनवाकर, उन स्तम्भों पर लेख खुदवाकर उन-उन प्रदेशों में ऐसे प्रदेशों में स्थापित किया जहाँ शिलाऐं व पहाड़ नहीं थे। यह सब कार्य राज्यारोहण के छब्बीसवें वर्ष में किया। पुनः अपने इस कार्य के परिणामों को भली प्रकार जानकर इस सातवें अभिलेख के रूप में खुदवाया। अन्यत्र कहीं और उपलब्ध न होने से इस सातवें स्तम्भ अभिलेख का विशेष महत्त्व है। ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि अन्य सभी स्तम्भों पर भी अशोक ने यह लेख खुदवाने की योजना बनाई होगी, परन्तु संभवतया मृत्यु के कारण उसकी यह योजना कार्यान्वित न हो पाई होगी।

2. धंमसावनानि धर्म श्रावणनि धार्मिक कथाऐं जो मनुष्य जीवन को धर्माचरण की प्रेरणा देती हैं।

3. धंमानुसथिनि— धमानुशस्तीः— धर्मोपदेश-जैसे सत्य बोलो, जीवों की हिंसा मत करो, उन्हें कष्ट न पहुँचाओ, सबके साथ अच्छा व्यवहार करो, अपने से बड़ों का सम्मान करो तथा यथाशक्ति दानादि करो।

4. उदपानानि-कुआं व प्याऊ जहां पीने का पानी उपलब्ध हो।

5. अढकोसिक्यानि— आठ कोस की दूरी विश्राम स्थलों की स्थिति की दृष्टि से उचित है परन्तु पानी पीने के प्रबन्ध की दृष्टि से बहुत बड़ी दूरी है संभवतया यहाँ आधा कोस (लगभग 4 किलोमीटर) की दूरी पर खुदवाना अभिप्रेत हुआ होगा।

6. वियापटा-व्यापृता से तात्पर्य छद्मरूप में विद्यमान होने से नहीं है अपितु वे धर्म महामात्र सेवारत है ऐसा अथ अधिक समीचीन है।

कलकत्ता-वैराट लघु शिला अभिलेख

1. पियदसि लाजा मागधे संघं अभिवादेति [ए]नं आहा अपबाधतं च फासु विहालतं चा
2. विदिते वे भंते आवतके हमा बुधसि धंमसि संघसी ति गालवे च प्रसादे च ए केचि भंते
3. भगवता बुधेन भासिते सवे से सुभासिते वा ए चु खो भंते हमियाये दिसेया हेवं सधंमे
4. चिल[ठि]तीके होसती ति अलहामि हकं तं वीतवे इमानि भंते धंमपलियायानि विनयसमुकसे
5. अलियवसाणि अनागतभयानि मुनिगाथा मोनेयसूते उपतिसपसिने ए चा लाघुलो-
6. वादे मुसावादं अधिगिच्य भगवता बुधेन भासिते। एतानि भंते धंमपालियायानि इछामि
7. किंति बहुके भिखुपाये चा भिखुनिये चा अभिखिनं सुनेयु चा उपधालयेयू चा
8. हेवंमेवा उपासका च उपासिका चा एतेनि भंते इमं लिखापयामि अभिपेतं मे जानंतू ति

संस्कृत-छाया

1. प्रियदर्शी राजा मागधः सङ्घम् अभिवादयति एनं [च] आह अपबाधतां च सुखविहारतां च।
2. विदितम् एव[हे] भवन्तः, यावत् अस्माकं बुद्धे धर्मे सङ्घे इति गौरवं च प्रसादः च। यत् किञ्चित्[हे] भवन्तः,
3. भगवता बुद्धेन भाषितं सर्व तत् सुभाषितम् एव। यत् तु खलु [हे] भवन्तः! अस्माभिः दृश्यते एवं सद्धर्मः
4. चिरस्थितिकः भविष्यति इति अर्हामि अहं तत् वक्तुम्। इमे भवन्तः! धर्मपर्यायाः विनयसमुत्कर्षः,

5. आर्यवंशाः, अनागतभयानि, मुनिगाथा मौनेयसूत्रम्, उपतिष्यप्रश्नः यः च राहुल-
6. वादः मृषावादम् अधिकृत्य भगवता बुद्धेन भाषिताः। एतान्। भवन्तः! धमपर्यायान् इच्छामि—
7. किमिति ? बहुकः भिक्षुपादः च भिक्षुण्यः च अभीक्ष्णं शृण्वन्तु च उपधारयेयुः च।
8. एवम् एव उपासकाः च उपासिकाः च। एतेन भवन्त! इमां लेखयामि अभिप्रेतं मे जानन्तु इति।

(हिन्दी अनुवाद)

1. मगध का प्रियदर्शी राजा संघ का अभिवादन करता हैं कहते हैं कि संघ निर्विघ्न रूप से सुख एवं शान्तिपूर्वक विहारचर्या करे।
2. यह आप को विदित ही है कि जैसा कि हमारा (भगवान) बुद्ध के (द्वारा उपदिष्ट) धर्म के प्रति सम्मान व कृपा है। हे सज्जनों! जो भी कुछ
3. भगवान बुद्ध ने कहा है वह सभी सुभाषित (हितकारी वचन) ही है। इस कारण निश्चय ही, सज्जनों
4. हम यह देखना चाहते हैं कि यह सद्धर्म/चिरकाल तक बना रहे यही मैं यह घोषणा करता हूँ। आप सब लोग धर्म के पर्याय रूप धार्मिक पुस्तकों जैसे विजयसमुत्कर्ष
5. आर्यवंश, अनागतभय, मुनिगाथाऐं, मौनेयसत्र, उपतिष्यप्रश्न तथा यह जो राहुलवाद,
6. जिसका विवरण भगवान बुद्ध ने मृषावाद के प्रसङ्ग में दिया था आप सब लोग इन धर्म के पर्यायों को (पढ़ें)
7. कि इनमें क्या-क्या है सभी भिक्षु समुदाय तथा भिक्षुणियां पुनः-पुनः श्रवण व मनन करें।
8. इसी प्रकार ही उपासक व उपासिकाऐं (इनका अध्ययन व मनन करें)। मैं जिस उद्देश्य से इस धर्मलिपि को लिखवा रहा हूँ—आप मेरी इस मनोकामना को समझें।

टिप्पणियाँ—

1. राजस्थान में जयपुर से 67 किलोमीटर दूर वैराट (विराट) नगर के निकट बीजक पहाड़ी की शिला पर उत्कीर्ण है। बैराट् लघु शिला लेख अत्यन्त

ही भग्नावस्था में हैं। मूल प्रतिलिपि एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता में सुरक्षित है।

2. संघ के सदस्यों को बौद्ध धर्म-ग्रन्थों का नित्य पारायण करने का उपदेश अशोक ने दिया।
3. प्रस्तुत अभिलेख से अशोक की बौद्ध धर्म के प्रति आस्था प्रगट होती है, तथा अशोक चाहता है कि संघ के सभी निवासी अभिलेख में वर्णित धर्म ग्रन्थों का नित्य परायण व मनन करें।
4. अभिलेख यह नहीं कहता कि अशोक प्राचीन सनातन वैद्रिक धर्म को छोड़कर बौद्ध बन गया।

रुम्मिनदेई स्तम्भ अभिलेख

1. देवानपियेन पियदसिन लाजिन वीसतिवसाभिसितेन
2. अतन अगाच महीयिते हिद बुधे जाते सक्यमुनिति
3. सिलाविगडभीचा कालापित सिलाथंभे च उसपापिते
4. हिद भगवं जाते ति लुंमिनीगामे उबलिके कटे
5. अठभागिये च

संस्कृत-छाया

1. देवानांप्रियेण प्रियदर्शिना राज्ञा विंशतिवर्षाभिषिक्तेन
2. आत्मना आगत्य महीयितम् इह बुद्धः जातः शाक्यमुनिः इति
3. शिलाविकटभित्तिका कारिता शिलास्तम्भः च उत्सर्पितः
4. इह भगवान् जातः इति लुम्बिनीग्रामः उद्‌बलिकः कृतः
5. आष्टभागिकः च।

(हिन्दी अनुवाद)

1. बीस वर्ष अभिषेक के पश्चात् देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा ने
2. स्वयं आकर, इस स्थान पर पूजा की क्योंकि यहां शाक्यमुनि बुद्ध ने जन्म लिया था,
3. पत्थरों की एक बड़ी दीवार बनवाई तथा एक शिलास्तम्भ स्थापित करवाया। यहां भगवान (बुद्ध) ने जन्म लिया था इस कारण लुम्बिनी ग्राम बलिमुक्त किया
5. तथा (कर का) आठवां भाग देने वाला (घोषित किया)।

टिप्पणियां—

1. नेपाल की तराई में पडरिया के निकट रुम्मिनदेई के मन्दिर के पास स्तम्भ। बुद्ध के जन्म स्थान लुम्बिनी की अशोक द्वारा यात्रा और इस अवसर पर स्तम्भ व शिलाभित्तिका की स्थापना तथा कर से मुक्ति की घोषणा।
2. सक्यमुनि-शाक्यमुनि तथागत गौतमबुद्ध
3. उसपापिते-उत्थापित-स्थापित करवाया
4. उद्‌बलिके-उद्‌गता बलिर्यस्मात् सः, बलिमुक्त अथवा कर-मुक्त,

5. अठभागिये-सामान्यतया कर आय का षष्ठांश होता था जो अनुमानतः 16.6 प्रतिशत के बराबर होता है जबकि अठभागिये-आष्टभागिक-आठवां भाग 12.6 प्रतिशत के बराबर होता है। एक ओर गांव को बलिमुक्त करने का आदेश है तथा दूसरी ओर आय का आठवां भाग कर रूप में देने का। बलिमुक्त होने की छूट संभवतः या बाहर से आने वाले तीर्थ यात्रियों पर लागू होती थी तथा आय का आठवां भाग गांव से कृषि व वाणिज्य आदि से होने वाली आय पर कर के रूप में प्राप्त किया जाता होगा।

गुजर्रा लघु शिला अभिलेख

1. देवा [न] पिय[स] पियदसिनो असोकराजस अ[ढ]तियानि संवछरानि उपासके सि[म] साधिके संवछ[रे] य च मे संघे य[।]ते ति [हं] बा-
2. [ढं]च परकंते ती [आ] हा एतेना अन्तरेना जंबुदीपसि देवानंपिय[स] अमिसं देवा संतो मुनिस मिसं देवा कटा पराकमस इयं फले [चइ]यं महतेना ति व
3. छकिये पापोतवे खुदाकेण पी परकममीनेना धंमं चरमीनेना पानेसू संयतेना विपुले पी स्वगे छकिये आराधयितवे से एताये
4. अठा[ये] इयं सावणे खुदाके चा उडारे चा धंमं चरंतू [यो]गं युजंतू अंता पि चा जानंतू किंति च चिलथि[ति] के धंमच[रने]
5. [इयं अठे वढिसि] ति [च] एनं वा धंमं चरं अति[यो] इयं च सावने विवुथे[न] [200] 50 6

संस्कृत–छाया

1. देवानांप्रियस्य प्रियदर्शिनः अशोकराजस्य। अर्थ–तृतीययानि संवत्सरानि उपासकोऽस्मि। साधिकं संवत्सरं यत् च अहं संघं यातः इति अहं बा–
2. ढं च पराक्रान्तः इति आह। एतेन अन्तरेण जम्बुद्वीपे देवानांप्रियस्य अमिश्रदेवाः सन्तः मनुष्याः मिश्रदेवाः कृताः। पराक्रमस्य इदं फलम्। नो चं इदं महता इति एव
3. शक्यं प्राप्तुम्। क्षुद्रकेण अपि पराक्रममाणेन धर्मं चरता प्राणेषु संयतेन विपुलः अपि स्वर्गः शक्यः आराधयितुम्। तद् एतस्मै
4. अर्थाय इदं श्रावणम्। क्षुद्रकाः च उदाराः चः धर्मं चरन्तु योगं युञ्जन्तु। अन्ता अपि च जानन्तु किमिति च चिरस्थितिकं धर्माचरणम्
5. अयम् अर्थः वर्धिष्यते च इमं वा धर्म चरन् अतीव। इदं च श्रावणं व्युषितेन 200 50 6।

(हिन्दी अनुवाद)

1. देवा (नां) प्रिय प्रियदर्शी राजा अशोक की (आज्ञा), साढ़े तीन वर्षों से

(मैं) उपासक हूँ। और एक वर्ष से अधिक समय हुआ जबकि 'मैं संघ की शरण में गया' मैंने अधिकाधिक

2. और परिश्रम किया है—ऐसा (अशोक ने) कहा है। इस अवधि में जम्बुद्वीप में देवानांप्रिय के राज्य में देवता होने पर भी (मनुष्यों में) नहीं मिलते थे, (अब) मनुष्य देवताओं के साथ रहने लगे हैं। (मनुष्यों में देवोचित परोपकार, सत्य, दया आदि गुण प्रचुरता से पाए जाते हैं)—यही मेरे पराक्रम (परिश्रम) का फल है।—यह ऐसा नहीं है कि बड़ा व्यक्ति ही (इन गुणों को)।

3. प्राप्त करने में समर्थ हो सकता है, निम्नकोटि का व्यक्ति भी इस पराक्रम से धर्म का पालन करता हुआ प्राणों पर नियन्त्रण होने से, महान स्वर्ग की प्राप्ति करने में समर्थ हो सकता है। इस कारण इसी

4. प्रयोजन के लिए यह श्रावण (धर्मोपदेश) है कि छोटे व बड़े सभी व्यक्ति धर्म का पालने करें तथा (स्वर्ग) आदि को प्राप्त करें। अन्त में भी और यह जानें कि धर्माचरण ही चिरस्थायी रहता है।

5. .... इस प्रकार इस धर्म का पालन करता हुआ अति (उन्नति को प्राप्त होगा)। यह धर्मश्रावण .... 256 वें दिन करवाया।

टिप्पणियां—

1. यह लेख मध्य प्रदेश के दतिया जिले में गुजर्रा नामक ग्राम के निकट की पहाड़ी की शिला पर उत्कीर्ण है।

2. अशोकराजस

   केवल मास्की व गुजर्रा के अभिलेखों में ही अशोक का नाम प्राप्त होता है, बाकि सभी जगह अन्य लेखों में अशोक की उपाधि 'देवानांप्रिय प्रियदर्शी' का प्रयोग हुआ है। इस कारण गुजर्रा व मास्की के अभिलेखों का ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विशेष महत्त्व है क्योंकि 'असोकराजस' (गुजर्रा) तथा 'देवानं पियस असोकस' निश्चित रूप से स्पष्ट शब्दों में यह सिद्ध करते हैं कि 'देवानं प्रिय पियदसी' मगध का राजा मौर्यवंशी अशोक ही है जो चन्द्रगुप्त का पौत्र तथा बिन्दुसार का पुत्र था। तथा उसी ने कलिंग युद्ध में विजय प्राप्त करने के पश्चात् मानवधर्म के वास्तविक रूप को अपने अभिलेखों के माध्यम से भारत की जनता तथा भारत से बाहर के देशों की जनता के सम्मुख रखा था।

मास्की शिला अभिलेख

1. देवानं पियस असोकस .... अढति
देवानां प्रियस्य अशोकस्य ......
2. .... निवषानि अं सुमि बुध शुके .... तिरे
3. .... मि संघं उपगते उठ .... नि उपगते पुरे जंबु
4. .... सि ये अमिसा देवा हुसु ते दानि मिसिभूता इय अठ खुदे
5. केन पि धमयुतेन सके अधिगतवे न हेवं देखितं विये उडा
6. द लके वइम अधिगेछयाति खुदके च उडालके च वत
7. विया हेवं ते कलं तं भदके से अ तिके च वढिसिति
8. चा दिय ठियं हेवं ति।

संस्कृत–छाया

1. देवानां प्रियस्य अशोकस्य.........अद्तृ(तीयानि)
2. (.......निवर्षाणि। अहम् अस्मि बुद्धश्रावकः)। तिरे
3. ....स्मि संघम् उपगतः उत्.......अस्मि उपगतः। पुराजम्बु.....
4. ......ये अमिश्रा देवा अभूवन् ते इदानीं मिश्रीभूताः। अयम् अर्थः क्षुद्र.....
5. केनापि धर्मयुक्तेन शक्योऽधिगन्तुम्। न एवं द्रष्टव्यम्— उदारः
6. एव इदम् अधिगच्छेत् इति। क्षुद्रकाश्च उदाराश्च।
7. वक्ष्यति एवमेव भद्रं कुर्वतः तत् अधिकं च वर्द्धि—
8. ष्यति च द्व्यर्द्ध एवम् इति।

(हिन्दी अनुवाद)

1. देवानांप्रिय अशोक के ...... आधे (साढे
2. वर्ष व्यतीत हुए मैं बुद्धश्रावक ..... बीता।
3. ...... संघ की शरण में गया हूँ ...... उत्था(न) .... में प्राप्त होने पर पहले जुम्बु-
4. ..... जो देवता मनुष्यों में नहीं मिलते थे वे अब मनुष्यों में मिलते हैं। यह प्रयोजन निम्नकोटि के

5. व्यक्ति द्वारा भी यदि वह धर्म युक्त, प्राप्त किया जा सकता है। यह कभी नहीं मानना चाहिए कि उच्चकोटि का व्यक्ति ही
6. इस प्रयोजन को प्राप्त कर सकता है। निम्नकोटि व उच्चकोटि के सभी व्यक्तियों को यह बताना चाहिए कि
7-8. ऐसा इस प्रकार से अच्छा कार्य करते हुए और ...... और अधिक बढेगा तथा इसी प्रकार से चिरस्थायी होगा।

टिप्पणियां—

1. असोकस— दतिया में गुजर्रा से प्राप्त शिला लेख की तरह यहाँ भी स्पष्ट ही अशोक, के नाम का उल्लेख है जिसे प्रजा 'देवानांप्रिय प्रियदर्शी' के रूप में अधिक जानती थी। जैसा कि अन्य अभिलेखों से भली प्रकार प्रगट होता है।
2. बुध शुके (बुद्ध श्रावक) बुद्ध की शिक्षाओं के अनुसार आचरण करने वाला गृहस्थी।
3. अमिसादेवा— 'मनुष्यों में देवताओं का मिश्रित होने' से तात्पर्य मनुष्यों में देवोचित गुणा-दया दान सत्य इत्यादि से है जिनके अनुसार जीवन व्यतीत करने से मनुष्य भी देवता बन जाते हैं।
4. खुदके— निम्न जाति में उत्पन्न तथा अभावों में जीने वाला,
5. उडालके— उच्चवंश में उत्पन्न तथा धन सम्पत्ति का स्वामी।